चौथी दुनिया

मूल्य 20 रुपये

दिल्ली रविवार 2 अगस्त 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

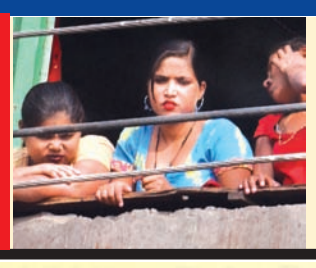

3 वैश्वीकरण के दौर में बढ़ता देह व्यापार

4 सांसद-विधायक फंड में फंस गई नीतीश सरकार

9 फादर ने ही की थी अभया की हत्या

ऐसे फैलता है आतंकवाद

के एस राधाकृष्णन

चीफ जस्टिस, गुजरात हाईकोर्ट

आर्थिक असमानता, बेरोज़गारी, जनसंख्या विस्फोट, सामाजिक बहिष्कार, अतिवाद, नस्लीय अल्पसंख्यकों का दमन, जनजातीय वाद और धार्मिक व राजनीतिक दमन को अगर नहीं सुलझाया गया तो हथियारबंद हिंसा जन्म ले सकती है. चाहे हम इसे उग्रवाद, अतिवाद, आतंकवाद या अलगाववाद कुछ भी कहें. युद्ध की शुरुआत हमेशा आदमी के दिमाग़ में होती है और समान विचारों वाले लोग पूरी दुनिया में रहते हैं. इसी वजह से इसके परिणाम केवल विवाद वाले देश में ही महसूस नहीं किए जाते, बल्कि उनकी धमक कहीं और भी सुनाई देती है. आतंकवाद, अपराध और ग़ैर अंतरराष्ट्रीय सशस्त्र विद्रोह के बीच की रेखाएं इतनी महीन और धुंधली पड़ गई हैं कि अब हम राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद में फ़र्क़ ही नहीं कर सकते. कई आतंकी अपने उद्देश्य के लिए लड़ते हुए मरना पसंद करते हैं, ताकि उनकी नज़र में जो सच है उसे पाया जा सके. वह महसूस करते हैं कि वह एक वंचित तबके का हिस्सा हैं और सुखद भविष्य की कोई उम्मीद उनके लिए बाक़ी नहीं है. वह अपनी ज़िंदगी दांव पर इसलिए लगाते हैं ताकि उनके हिसाब से दूसरों को भी शांति और भौतिक रूप से समृद्ध जीवन का अधिकार नहीं है.

आस्ट्रिया के राजकुमार की 1914 ई. में सरायेवो में हत्या का मामला पूरी तरह से आस्ट्रिया का आतंरिक मामला था, लेकिन इसकी वजह से पहला विश्व युद्ध शुरू हुआ. दुनिया में आतंकवादी गतिविधियां भारत के साथ ही चीन, सोवियत संघ, वियतनाम, कंबोडिया और दक्षिण कोरिया-उत्तर कोरिया के अलावा इज़रायल-फिलीस्तीन और पाकिस्तान में भी देखी गई हैं. 11 सितंबर 2001 को न्यूयॉर्क में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमला हो या पिछले साल 26 नवंबर को मुंबई के ताज होटल पर हुआ आतंकी हमला-हमारे बच्चों, युवाओं और बूढ़ों ने उसे टी.वी. पर लाइव देखा. कई भारतीयों के लिए संसद पर 2001 में हुआ हमला दरअसल हमारे लोकतंत्र पर हमला था. खेलों को पसंद करने वाले लोग 1972 में म्यूनिख ओलंपिक में वह हमला नहीं भूल सकते, जब तथाकथित फिलीस्तीनी जिहादियों ने 11 इज़रायली एथलीटों की हत्या कर दी थी. हालात यहां तक बिगड़ गए थे कि इज़रायल ने श्रृंखलाबद्ध तरीक़े से बम बरसा कर सैकड़ों गुरिल्लों को मार डाला था. मार्च 2009 में लाहौर में श्रीलंकाई क्रिकेट टीम पर रॉकेट लांचर और ग्रेनेड से हमला किया गया. इस वारदात में आठ लोग मारे गए, जबकि कई घायल हो गए थे. सौभाग्य की बात यही रही कि खिलाड़ियों को मामूली चोटें ही आईं.

हथियारों के मामले में तकनीकी विकास ने ऐसे हालात पैदा कर दिए हैं, जहां आतंकी संगठनों को ताज़ातरीन हथियार क़ब्ज़ाने का मौका मिल जाता है और वे अधिक से अधिक बर्बादी और आतंक फैला सकते हैं. दुर्भाग्य से अब तक व्यापक नरसंहार वाले हथियारों के उत्पादन और संग्रहण तथा इस्तेमाल पर रोक नहीं है. हालांकि कुछेक सदस्य देशों ने उन हथियारों पर नियंत्रण के लिए और परमाणु हथियारों के नियमन के लिए संधियां की हैं. इस लक्ष्य को पाने के लिए कई तरह के सम्मेलन भी किए गए हैं. फिर भी ख़बरें बताती हैं कि पूरी दुनिया में लगभग 36000 परमाणु हथियार हैं. इनमें रूस के पास सबसे अधिक 22,500 हथियार हैं जबकि अमेरिका के पास 12070, फ्रांस के पास 500, चीन के पास 450, ब्रिटेन के पास 380, भारत के पास 65 और पाकिस्तान के पास 25 परमाणु हथियार हैं. इन सबके अलावा दुनिया के 80 देशों ने व्यापक नरसंहार वाले रासायनिक और जैविक हथियार बना लिए हैं. अमेरिका ने 1200 से अधिक परमाणु परीक्षण किए हैं तो रूस ने लगभग 1000, ब्रिटेन ने लगभग 45, फ्रांस ने 210. चीन ने 50 और भारत ने लगभग 10 परमाणु परीक्षण किए हैं. पाकिस्तान ने भारत से होड़ लगाते हुए 10 के आस-पास परमाणु परीक्षण किए हैं. ईरान, इराक़, उत्तर कोरिया-दक्षिण कोरिया और लीबिया ने भी रिपोर्टों के मुताबिक परमाणु हथियार कार्यक्रम चला रखे हैं. यही बात इज़रायल के संदर्भ में भी कही जा रही है. इस तरह परमाणु परीक्षण पूरे वातावरण को ही दूषित करते हैं. इसी वजह से जो हवा हम सांस लेते हैं, जो खाना हम खाते हैं और जो पानी हम पीते हैं-काफी हद तक प्रदूषित हो जाते हैं और यह पारिस्थितिकी और पर्यावरण के लिए काफी हद तक ख़तरनाक हैं.

लाखों लोग मारे जा चुके हैं और हज़ारों बच्चे युद्ध और आतंकी गतिविधियों की वजह से अनाथ हो चुके हैं. वे कुपोषण, भूख और बीमारी का भी शिकार होते हैं. परमाणु, रासायनिक और जैविक हथियार पूरी दुनिया की पारिस्थितिकी को बर्बाद कर सकते हैं. पर्यावरण और पारिस्थितिकी को देशों की सीमाओं में बांटकर नहीं रखा जा सकता. इसी तरह अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद को भी पूरी दुनिया के देशों को मिल कर ही निपटाना होगा. अगर आतंक का अंत हो गया, तो हम आनेवाली पीढ़ियों को एक स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण और पारिस्थितिकी दे सकेंगे. साथ ही, जिन संसाधनों का इस्तेमाल आतंकी गतिविधियों, हथियारों के लिए शोध और निर्माण पर ख़र्च किया जा रहा है, उनका इस्तेमाल दूसरे सकारात्मक कामों में किया जा सकता है. आतंकी हमले न केवल ज़िंदगी छीनते हैं, बल्कि स्वास्थ्य, आशा और लोगों की उम्मीदों का भी क़त्ल कर देते हैं. इसके साथ ही वे भौतिक तथ्यों, रहन-सहन और आवास, खेती, पुल, जलसंसाधन, अस्पताल और बाक़ी तथ्यों को भी बिगाड़ देते हैं. मूलभूत सुविधाएं जैसे बिजली, पानी वग़ैरह भी बाधित हो जाती हैं. खेती की ज़मीन ज़हरीली हो जाती है, सड़कों और गलियों में माइंस लगा दिए जाते हैं और लोगों तक उनकी पहुंच मुश्किल हो जाती है. इस तरह के हमलों का सीधा अर्थ तो यह होता है कि लोगों को खाना भी नसीब नहीं होगा. पानी पीने लायक नहीं होगा, इमारतें बुरी हालत में और टूटी-फूटी होंगी. स्वास्थ्य सुविधाएं दूभर हो जाएंगी और शत्रुता की समाप्ति के बाद भी लोगों की ज़िंदगी दयनीय होगी. हमने यह भी देखा है कि सोमलिया के तट पर आतंकी हमले हो रहे हैं, जिसमें अंतरराष्ट्रीय व्यापार में लगे जहाजों को अगवा किया गया है. जीवन की ज़रूरी सुविधाओं की आपूर्ति बाधित हो जाती है या बिल्कुल ही नष्ट हो जाती है. यह हालात मानवता मात्र के लिए चिंतनीय और शोचनीय हैं.

सुप्रीम कोर्ट की अब तक निभाई गई भूमिका

भारतीय सुप्रीम कोर्ट की न्यायिक भूमिका में 1977 से अब तक काफी बदलाव आए हैं. ख़ासकर मानवाधिकारों या मौलिक अधिकारों और भारतीय संविधान की भाषा में. किसी ऐसे हालात जिसमें भारतीय क़ानून की अपर्याप्त व्यवस्था उजागर हुई हो, जैसे भारतीय संविधान के अंदर मानवाधिकारों की व्याख्या, भारतीय न्यायालयों ने उसे अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों के संदर्भ में व्याख्यायित और विकसित की है. इसका इंतज़ार नहीं किया गया कि भारत की विधायिका कोई घरेलू क़ानून बनाए या लागू करने की सोचे. हमारा संविधान कुछ मूलभूत अधिकार हरेक व्यक्ति को देता है, केवल भारतीय नागरिकों को ही नहीं. भारत का क़ानूनी और संस्थागत ढांचा मानवाधिकारों के सम्मान पर आधारित है. इसका मतलब यह कि हमारा ढांचा अंतरराष्ट्रीय मानवतावादी क़ानूनों के सिद्धांतों से एकमत और उनके प्रति संवेदनशील है. भारतीय सशस्त्र बलों को निर्देश है कि वह अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों का पालन करें और उनकी सैन्य संहिता भी यही कहती है. भारतीय सुप्रीम कोर्ट ने एक नीति निर्देशक सिद्धांत का इस्तेमाल न्यायिक सक्रियता के दायरे में आनेवाले मूलभूत अधिकारों के लिए किया है, ताकि घरेलू क़ानून में किसी खास नुक्ते को पूरा किया जा सके. न्यायालय ने बेहतर अंतरराष्ट्रीय क़ानून का इस्तेमाल भी अनोखे ढंग से किया है. जैसे, ऐसे क़ानून को नगरपालिका के क़ानून से जोर दिया, ताकि राष्ट्रीय न्यायालय इसका इस्तेमाल कर सकें. भले ही इस संदर्भ में कोई ख़ास विधेयक हो या न हो. यही वजह है कि भारत में अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों के इस्तेमाल को न्यायिक रचनात्मकता ने दूर कर दिया. यही प्रक्रिया पूरी तब होती है जब अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों को ध्यान में रखते हुए घरेलू क़ानून बनते हैं. भारतीय संविधान में अनुच्छेद 14,21,23 और 24 को न्यायिक तौर पर विस्तृत तौर से व्याख्यायित किया गया है. ताकि मानवीय सम्मान के हरेक पहलू को, जैसे समानता, सम्मान के साथ जीवन, स्वतंत्रता, विकास का अधिकार किसी भी तरह के शोषण से मुक्ति और बच्चों के अधिकार की सुरक्षा वग़ैरह को सुनिश्चित किया जा सके.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

परमाणु हथियारों का ख़ात्मा

पहले से ही मौजूद परमाणु और दूसरे हथियारों को नष्ट करने में उससे कहीं अधिक रक़म लगेगी, जितना परमाणु बमों और दूसरे हथियारों को बनाने में ख़र्च हुआ था. यही वजह है कि इस बात की ज़ोरदार कोशिश होनी चाहिए कि व्यापक नरसंहार के ऐसे हथियार बनाए या सृजित नहीं किए जाएं. परमाणु परीक्षणों और बमों के इस्तेमाल से पहले ही हमारी पृथ्वी घायल हो चुकी है. आतंकी समूहों ने जिस तरह के हथियार इस्तेमाल किए हैं, उससे हमारे पर्यावरण को काफी नुक़सान पहुंच चुका है. नतीजा हमारे सामने हैं. जलवायु में परिवर्तन हो, ब्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन हो, ग्लोबल वार्मिंग हो या फिर ग्लेशियर का पिघलना, यह सब कुछ हमारे ही हथियारों की देन है. जैविक और रासायनिक हथियार व्यापक नरसंहार करते हैं और ये केवल धनी और प्रभावी देशों के पास ही नहीं बल्कि इन्हें ग़रीब देश भी बना सकते हैं. इसके अलावा तस्करी का रास्ता तो खुला है ही. हमारी दुनिया ग्लोबल वार्मिंग और परमाणु युद्ध के दोहरे ख़तरे से दो-चार है. दोनों ही हमारी पृथ्वी से इंसानों और जानवरों का नामोनिशान तक मिटा देंगे. जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग धरती के साथ ही समुद्री जीवन के लिए भी ख़तरनाक हैं. इसके अलावा जीवाश्म ईंधन का प्रयोग और दुष्प्रयोग वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को बढ़ा रहा है. अब आइए हम देखते हैं कि हमारे अपने नियम इस संदर्भ में कितने कठोर और आसान हैं या हमारा देश इन मसलों पर किस तरह सोचता है.

हमारे संविधान में साफ तौर पर इस बात को माना गया है कि अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों का कितना व्यापक और समग्र महत्व है. संविधान का चौथा अध्याय राज्य की नीतियों के संदर्भ में नीति निर्देशक तत्वों की व्याख्या करता है. अनुच्छेद 37 में यह साफ तौर पर कहा गया है कि राज्यों को कोई भी क़ानून बनाने में नीति निर्देशक सिद्धांतों का प्रयोग करना चाहिए. हालांकि यह सिद्धांत कोर्ट में बाध्यकारी होने वाले व्यक्तिगत अधिकारों की चर्चा नहीं करते. जहां तक अंतरराष्ट्रीय मामलों का सवाल है तो संविधान के अनुच्छेद 51 में यह साफ तौर पर कहा गया है कि दूसरे देशों के साथ अपने संबंधों को लेकर किस तरह के क़ानून लागू करने हैं. भारत हर संभव प्रयास करेगा कि अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा दिया जा सके, भारत देशों के बीच न्यायपूर्ण और सम्मानजनक संबंध रखेगा. भारत अंतरराष्ट्रीय क़ानून और समझौतों को मानेगा और सम्मान देगा और अंतरराष्ट्रीय विवादों का हल आपसी सहयोग और बातचीत से करने को बढ़ावा देगा. संविधान के अध्याय 4-ए में अनुच्छेद 51-ए है. इसमें स्थापित किया गया है कि हरेक भारतीय नागरिक के मौलिक कर्तव्य क्या हैं? अनुच्छेद 51-ए में बताए गए कर्तव्य, अनुच्छेद 29 (1) के सार्वभौम घोषणा से ही मिलते हैं. अनुच्छेद 51-ए अधिक विस्तृत और व्यापक है जबकि कर्तव्यों की सार्वभौम घोषणा संक्षिप्त है. अनुच्छेद 51-ए हरेक भारतीय का यह कर्तव्य बताता है कि वह उन पवित्र विचारों को मानेगा और बढ़ाएगा-जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को प्रेरित किया था-देश की रक्षा करेगा, भारतीय संस्कृति की समृद्ध विरासत को संरक्षित करेगा और उसका प्रसार करेगा, पर्यावरण की रक्षा और उसके सुधार में योगदान देगा और महत्वपूर्ण शैक्षिक सुधार करेगा. अनुच्छेद 51-ए के तहत दिए गए विस्तृत कर्तव्यों की सूची महात्मा गांधी के उस विचार से मेल खाती है कि अधिकारों का रास्ता कर्तव्य की राह से होकर ही गुज़रता है. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 253 भारतीय संसद को भारतीय क्षेत्र के पूरे या किसी एक हिस्से में कोई भी समझौता या संधि लागू करने का अधिकार देता है. जिसका भारत एक हिस्सा है या फिर किसी अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में लिए गए फ़ैसले का हिस्सा हो. हां, इसका मतलब यह नहीं कि संविधान की मूल भावना से इतर कोई फ़ैसला लिया जा सकता है. मैं जब जम्मू और कश्मीर में मुख्य न्यायाधीश के तौर पर काम कर रहा था, तब आतंकियों, उग्रवादियों और अलगाववादियों से संबंधित कई मामले मेरे भी सामने आए थे, लेकिन कई मुद्दे सुलझाए नहीं जा सके, क्योंकि बाध्यकारी अंतरराष्ट्रीय क़ानून मौजूद नहीं थे.

के एस राधाकृष्णन

(लेखक गुजरात उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

आरटीआई की जद में अब बाबू भी!

अगर नेताओं को चुनाव के समय अपनी पूरी संपत्ति का ब्योरा देना पड़ता है तो फिर मेरे प्यारे बाबुओं के लिए भी ऐसा ही प्रमोशन के समय क्यों नहीं होना चाहिए? जहां एक ओर केंद्रीय सूचना आयोग संपत्ति के ब्योरे के लिए जजों के पीछे पड़ा है, वहीं पंजाब में एक वकील ने आरटीआई का हथियार राज्य के आईएएस और आईपीएस अफसरों पर तान दिया है. हालांकि, आरटीआई एक्ट के तहत दागे गए इस सवाल ने राज्य के कार्मिक विभाग को सकते में ला दिया है. इस आवेदन में पूछा गया है कि क्या आईएएस और आईपीएस अधिकारियों को समय-समय पर अपनी संपत्ति की जानकारी सरकार को देनी पड़ती है? अगर हां, तो आवेदन करने वाले वकील ने सेवा संभालते समय बाबुओं के टैक्स रिटर्न की कॉपी मांगी है. अब तक तो

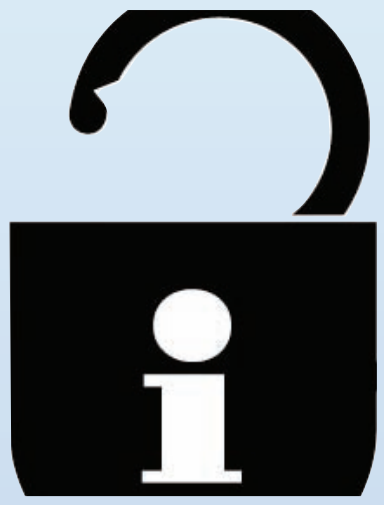

विभाग ने बाबुओं की संपत्ति का कोई भी ब्योरा देने से मना कर दिया है, हालांकि इसने माना है कि अधिकारी हर साल संपत्ति का ब्योरा जमा करते हैं. सवाल यह है कि क्या टैक्स रिकार्ड और ब्योरे सचमुच में मिल जाएंगे?

सूत्रों के अनुसार अब इस वकील ने एक क़दम आगे बढ़ते हुए कार्मिक विभाग की पहली अपील अथॉरिटी में अपील दायर कर दी है, जिसने इस बाबत राय मांगते हुए आईटी विभाग के सचिव को पत्र लिखा है. इस बीच दूसरे वकील की भी यही राय है कि आईएएस और आईपीएस बाबू अपनी संपत्ति छुपाए नहीं रख सकते, क्योंकि यह सूचना पूरी तरह से निजी नहीं है. अब इस मामले में जीत किसकी होती है, यह जानने में यक़ीनन मेरे पसंदीदा बाबुओं की दिलचस्पी रहेगी.

माथुर आयोग को नहीं मिल रही सूचना

पिछली बीजेपी सरकार के भ्रष्टाचार की जांच कराने की कोशिश में जुटे राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत की कोशिशें लालफीताशाही में उलझ गई हैं. राज्य के मुख्य सचिव इंद्रजीत खन्ना और सेवानिवृत्त आईपीएस अफसर एच एन मीणा, जो इन मामलों की जांच कर रहे माथुर आयोग के सदस्य हैं, ने आरोप लगाया है कि बाबुओं के उदासीन रवैए के कारण जांच बड़ी धीमी गति से बढ़ रही है.

माथुर आयोग का गठन वसुंधरा राजे सरकार के समय ज़मीन से संबंधित भ्रष्टाचार के मामलों की छानबीन करने के लिए किया गया है. आयोग ने अपनी जांच से जुड़े सवाल जयपुर विकास प्राधिकरण सहित सात सरकारी विभागों में भेजे. लेकिन ख़बरों के मुताबिक बाबूलोग या तो सूचना तोड़-मरोड़ कर दे रहे हैं या नहीं दे रहे हैं. जनता इस सब के बीच यह सोच रही है कि क्या यह आयोग जांच पूरी भी कर पाएगा? साफ है, कम ही लोग इसकी आशा कर रहे हैं. ख़ासकर वे बाबू जो शायद अभी चुप रहकर इस पूरे मामले के शांत होने का इंतज़ार कर रहे हैं. क्यों, सही कहा न?

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

एबी प्रसाद बने अतिरिक्त सचिव

बिहार काडर के 1976 बैच के आईएएस अधिकारी एबी प्रसाद की नियुक्ति गृह मंत्रालय के राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन विभाग में अतिरिक्त सचिव के तौर पर हुई है. उन्होंने हरिशंकर ब्रह्मा का स्थान लिया है. ग़ौरतलब है कि हरिशंकर ब्रह्मा आंध्र प्रदेश काडर के 1975 बैच के आईएएस अधिकारी हैं और पिछले महीने उन्होंने ऊर्जा मंत्रालय में सचिव के रूप में कार्यभार संभाला है.

प्रधान पहुंचे स्वास्थ्य मंत्रालय

प्रसन्न कुमार प्रधान, (पश्चिम बंगाल काडर, बैच 1997) को स्वास्थ्य मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव बनाया गया है. केंद्र में आने वाले प्रधान इस समय पश्चिम बंगाल के शहरी विकास विभाग के अंतर्गत म्यूनिसिपल विभाग में मुख्य सचिव हैं. वह स्वास्थ्य मंत्री गुलाम नबी आज़ाद के साथ तब भी काम कर चुके हैं, जब आज़ाद शहरी विकास मंत्रालय में हुआ करते थे.

चंद्रशेखर बने सचिव

पंजाब काडर के 1978 बैच के आईएएस अधिकारी राकेश सिंह को नया प्रभार मिला है. वह अब सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव का पद संभालेंगे. वह हाल में ही तरक़्क़ी पाकर सूचना व प्रसारण सचिव बनने वाले चंद्रशेखर की जगह लेंगे. चंद्रशेखर 1975 बैच के आईएएस अफसर हैं. ग़ौरतलब है कि सूचना-प्रसारण सचिव का काम पहले संस्कृति व पर्यटन सचिव ही देख रहे थे.

आतंकियों के मामले में अपराध की जांच

आतंकवाद का फैलाव पूरी दुनिया में है और वह देशों की संप्रभुता और एकता को अस्थिर तो करता ही है, साथ ही यह देश के संविधान को भी नुक़सान पहुंचाता है. आतंकवाद धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने और क़ानून के राज को भी नुक़सान पहुंचाता है. साथ ही पूर्वाग्रह और घृणा को बढ़ाता है. कट्टरपंथ और उन्माद को फैलाता है, और गंभीर तौर पर मानवाधिकारों के उल्लंघन को भी बढ़ावा देता है. आतंकवाद आम आदमी में अराजकता और भय की मानसिकता को पैदा करता है. समाज में सद्भाव को नष्ट करता है. सांप्रदायिक कट्टरता को उकसाता है और आर्थिक विकास को नष्ट करता है. आज दुनिया में जिस तरह का अभूतपूर्व आतंकवाद फैल रहा है, वह सभी देशों के लिए एक चुनौती है और इसीलिए एकजुट वैश्विक कार्रवाई की ज़रूरत है. ताकि इस तरह के संगठित अपराध को ख़त्म किया जा सके. प्रभावी और वैज्ञानिक तरीक़े से पुलिसिया जांच ज़रूरी है, अगर हमें आतंकवाद से मुक़ाबला करना है तो. ताकि कोई निर्दोष अदालती मामले में न फंसे. यह शिकायत आम तौर पर की जाती है कि आतंकवाद संबंधी गंभीर मामलों को बहुत ही चलताऊ रवैए से निपटाया जाता है और कई बार साफ-सुथरी प्रक्रिया का पालन भी नहीं किया जाता है. किसी के दबाव में की गई जांच, जबरन बनाए गए सबूत और नक़ली गवाहों की पेशी बारहां ऐसे मामलों में की जाती है जब सभी फॉरेंसिक उपकरण बेकार हो जाते हैं और उचित वैज्ञानिक जांच की संभावना ख़त्म हो जाती है. पुलिस की वैज्ञानिक जांच की क्षमता भी समय के साथ कम हुई है और आतंकियों से संबंधित मामलों को बहुत ही घालमेल वाले तरीक़े से निपटाया जाता है. आतंकी समूह और संगठन आधुनिक संचार व्यवस्था, यातायात के साधन और तकनीकी रूप से बेहद विकसित और घातक हथियारों का फ़ायदा उठाते हैं. इसके अलावा वे मानव बम बनाते हैं. एक बेहद पेशेवर एजेंसी की ज़रूरत आज के ज़माने में ख़ासतौर से है, जो आधुनिक वैज्ञानिक जांच कर सके. इस ज़रूरत को तुरंत ही पूरा किया जाना चाहिए. शायद इसको दिमाग़ में रखकर ही भारतीय संसद ने राष्ट्रीय जांच क़ानून 2008 पारित किया, ताकि आतंकियों से संबंधित अपराधों और मामलों की प्रभावी जांच की जा सके. इसके साथ ही राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) की स्थापना की, जो कि

नई दिल्ली स्थित सुप्रीम कोर्ट

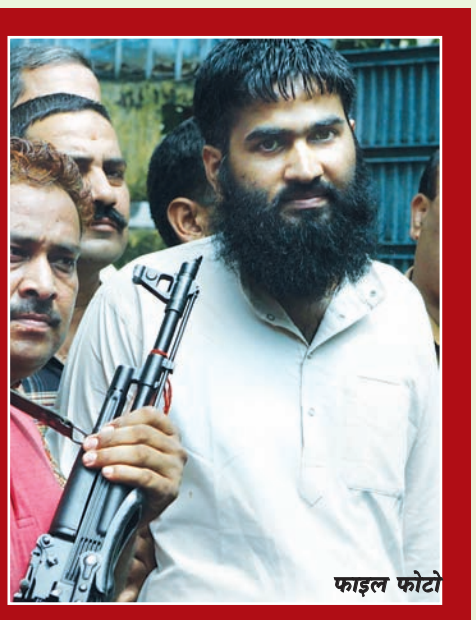
फाइल फोटो

पुलिस की गिरफ़्त में संदिग्ध आतंकी

बिल्कुल प्रभावी और सटीक ख़ुफ़िया जानकारी जुटा सके और आतंकी तत्वों का आंकड़ा जमा कर सके. अनलॉफुल एक्टिविटिज़ (प्रिवेंशन) एमेंडमेंट एक्ट 2008 ने भी कई अहम और प्रक्रियात्मक बदलाव किए हैं, ताकि एनआईए प्रभावी और निर्णायक तौर पर आतंकियों से संबंधित मसलों से निपट सके. क़ानून की धारा 43-ई बताता है कि किसी भी आरोपी के पास से हथियार, गोला-बारूद या धारा पंद्रह में वर्णित कोई भी सामान पाए जाने पर उसे आतंकी गतिविधि में लिप्त होने का दोषी माना जाएगा. यह धारणा तब भी बन सकती है अगर आतंकी घटना की जगह पर आरोपी की अंगुलियों के निशान या इस तरह के और सबूत मिल जाते हैं. हमें ज़रूर ही एक अंतरराष्ट्रीय जांच संधि की वकालत और कोशिश करनी चाहिए, जो आतंकवाद और संगठित अपराधों की जांच कर सके. हमें एक अंतरराष्ट्रीय जांच एजेंसी भी बनानी चाहिए, ताकि विभिन्न देशों की जांच एजेंसियों के बीच तालमेल बैठाया जा सके और आतंकवाद से संबंधित मामलों से बेहद प्रभावी और बेहतर ढंग से निपटा जा सके. आख़िर इसी तरह तो अपराधियों को न्याय की चौखट पर लाया जा सकेगा.

के एस राधाकृष्णन
feedback.chauthiduniya@gmail.com

अंतरराष्ट्रीय क़ानून, अंतरराष्ट्रीय न्यायालय और अंतरराष्ट्रीय अपराध न्यायालय

अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद कठोर क़ानूनों की मांग करता है, क्योंकि आतंक को इसी के ज़रिए रोका जा सकता है. जैन टिमबर्गेन- जो कि 1969 के अर्थशास्त्र के नोबल विजेता थे- ने कहा था कि दुनिया की समस्याएं अब केवल राष्ट्रीय सरकारों के द्वारा हल नहीं हो सकतीं. इनसे संयुक्त राष्ट्र को मज़बूत करके ही निपटा जा सकता है. ऐसे अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों की जल्द ज़रूरत है, वरना मानवता एक अनकहा कष्ट झेलती रहेगी.

हमें एक ऐसे तंत्र की खोज करने की ज़रूरत है जो अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों को लागू कर सके और उसका उल्लंघन करने वालों को सज़ा दे सके. हमें अंतरराष्ट्रीय न्यायालय और अंतरराष्ट्रीय अपराध न्यायालय को मज़बूत करने की ज़रूरत है. अभी तो ऐसी कोई संस्था नज़र नहीं आती जिससे हम कोई उम्मीद कर सकते हैं. अंतरराष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना 1945 में की गई. आलोचना की गई थी कि इसका बाध्यकारी

हमें एक ऐसे तंत्र की खोज करने की ज़रूरत है जो अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों को लागू कर सके और उसका उल्लंघन करने वालों को सज़ा दे सके. हमें अंतरराष्ट्रीय न्यायालय और अंतरराष्ट्रीय अपराध न्यायालय को मज़बूत करने की ज़रूरत है. अभी तो ऐसी कोई संस्था नज़र नहीं आती जिससे हम कोई उम्मीद कर सकते हैं.

हेग (नीदरलैंड) स्थित अंतरराष्ट्रीय न्यायालय का मुख्यालय

अधिकार क्षेत्र उन मामलों तक सीमित था, जिसमें दोनों पक्ष इसके अधिकार क्षेत्र से सहमत हों. संगठन, निजी संस्थान और आम आदमी की इस न्यायालय तक कोई पहुंच नहीं थी. अगर वे अपने सर्वोच्च न्यायालय के फ़ैसले के ख़िलाफ़ कोई अपील करना चाहें तो उसका कोई रास्ता न था. अंतरराष्ट्रीय न्यायालय सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के सामने भी शक्तिहीन है, जो इसके फ़ैसलों के ख़िलाफ़ वीटो कर सकते हैं. दुर्भाग्य से, अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के फ़ैसलों को किसी देश के आंतरिक न्यायालयों में लागू नहीं किया जा सकता है और न ही इसके लिए उसके पास कोई संसाधन है. हालांकि उसके फ़ैसले लागू नहीं हो सकते, लेकिन न्यायालय के सदस्यों द्वारा दिए गए सिद्धांत स्थानीय फ़ैसलों में बड़ी अहम भूमिका निभाते हैं. सभ्य देशों को इस न्यायालय में दिए गए फ़ैसलों को पूरा सम्मान देना चाहिए. अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के फ़ैसलों के लिए सम्मान बढ़ाने की प्रक्रिया दो स्तरों पर चलनी चाहिए. पहली, अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सदस्यों के बीच और दूसरी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर न्यायालयों के बीच होनी चाहिए. इस प्रक्रिया में न्यायपालिकाओं का जुड़ना संबंधित समुदायों में अंतरराष्ट्रीय मानकों की स्थिति के लिए काफी ज़रूरी है और नतीजतन अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों को और समृद्ध करेगा. इससे अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के फ़ैसलों के घरेलू न्यायालयों में लागू होने का रास्ता भी खुलेगा.

अंतरराष्ट्रीय अपराध न्यायालय (2002) नरसंहारों, युद्ध अपराधों और मानवता के ख़िलाफ़ किए जा रहे अपराधों की जांच कर रहा है. अंतरराष्ट्रीय न्यायालय से उलट, जो कि राज्यों के बीच के विवाद सुलझाता है, इस न्यायालय में व्यक्तियों को भी उसके अपराधों की सज़ा दी जाती है. अंतरराष्ट्रीय अपराध न्यायालय को ऐसे गंभीर मामलों की सुनवाई का अधिकार है, जो किसी राज्य के सीमाक्षेत्र में आंशिक रूप से हुआ हो या आरोपित किसी राज्य का नागरिक हो. संयुक्त राष्ट्र के महासचिव के पास इस बात का अधिकार है कि वह किसी देश की आपत्ति के बावजूद कोई मामला इस न्यायालय के पास भेज सके.

अंतरराष्ट्रीय न्यायालयों के सही तरीक़े से काम करने के लिए यह ज़रूरी है कि इसके सदस्य राष्ट्र आपसी सहयोग और सहायता की भावना रखें, जिसके लिए एक मज़बूत राजनीतिक इच्छाशक्ति भी आवश्यक है.

के एस राधाकृष्णन
feedback.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार
आर एन आई रजि.न.45843/86
वर्ष 23 अंक 20, 27 जुलाई-2 अगस्त 2009
प्रधान संपादक
संतोष भारतीय
मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित
संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001
फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906
समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

वैश्वीकरण के दौर में बढ़ता देह व्यापार

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

देह व्यापार के लिए गर्म गोश्त का चोरी छिपे दुनिया भर में यहां से निर्यात भी बढ़ा है. कश्मीर से कन्याकुमारी और अंडमान निकोबार तक और कोलकाता से मुंबई तक यह अवैध व्यापार तेज़ी से विस्तार ले रहा है. सरकार, राजनैतिक दल, समाज और धर्म के संचालक व ठेकेदार सभी इसकी निंदा तो करते हैं, लेकिन इस पर नियंत्रण लगाने के लिए कोई प्रयास नहीं करते.

तमाम सरकारी–ग़ैर सरकारी सर्वे बताते हैं वैश्वीकरण के इस युग में देह व्यापार दुनिया का सबसे बड़ा और कमाऊ बन गया है. इससे कई देशों में इस व्यवसाय को क़ानूनी मान्यता और खुली छूट तक मिली हुई है. लेकिन, यह धंधा उन देशों में भी तेज़ी से फल–फूल रहा है, जहां क़ानून, धर्म और समाज इसकी अनुमति नहीं देता. दरअसल पूंजीवादी बाज़ार की ताक़तें श्रम और सेक्स दोनों को इस्तेमाल की वस्तु बना देता है. यही कारण है कि ग़रीब, पिछड़े, अभावग्रस्त देशों और समाजों में वेश्यावृत्ति पनप रही है. डॉ. डेविड सी. कॉर्टन ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों के ख़िलाफ़ 1994–95 में अपनी एक किताब में दुनिया के कई देशों की यात्राओं के अनुभवों के आधार पर मनुष्य के शोषण और आर्थिक संघर्ष का मार्मिक वर्णन किया था. उन्होंने लिखा कि केवल थाईलैंड, श्रीलंका और फिलीपींस में पांच लाख बच्चे देह व्यापार में हैं. लाखों की संख्या में स्त्रियां भी इसमें लगी हुई हैं सो अलग. यह तब की बात है.

आज की बात यह कि आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में भारत में भी देह व्यापार ख़ूब फला–फूला है. देह व्यापार के लिए गर्म गोश्त का चोरी छिपे दुनिया भर में यहां से निर्यात भी बढ़ा है. कश्मीर से कन्याकुमारी और अंडमान निकोबार तक और कोलकाता से मुंबई तक यह अवैध व्यापार तेज़ी से विस्तार ले रहा है. सरकार, राजनैतिक दल, समाज और धर्म के संचालक व ठेकेदार सभी इसकी निंदा तो करते हैं, लेकिन इस पर नियंत्रण लगाने के लिए कोई प्रयास नहीं करते. यही कारण है कि दुर्गा– काली पूजा करने वाले बंगाली समाज व वामपंथी दलों द्वारा शासित पश्चिम बंगाल और मुंबादेवी के शहर मुंबई में देश की देह व्यापार की सबसे बड़ी संगठित मंडियां है. सरकारी सहयोग से किए गए एक एनजीओ के सर्वे से पता चला है कि 21वीं सदी के पहले दशक में देश में कार्यरत वेश्याओं की संख्या में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है. 1997 तक देश में यह संख्या जहां 20 लाख थी, वहीं 2007 तक बढ़कर 30 लाख हो गई. इनके अलावा चोरी छिपे देह व्यापार करने वाली महिलाओं की भी कमी नहीं है. सर्वे से यह भी पता चला कि देह व्यापार करने वाली स्त्रियां 12 से 15 वर्ष की कम उम्र में ही इस घृणित पेशे में आ जाती हैं. यह सर्वे 31 राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों में लगभग दो वर्ष तक किया गया. सर्वे 9,500 वेश्याओं के अलावा प्रशासन के उच्च अधिकारियों, पुलिस, मीडियाकर्मी, समाजसेवी और वेश्यावृत्ति के क्षेत्र में सुधार कार्य में सक्रिय एनजीओ के कार्यकर्ताओं से विस्तृत बातचीत के आधार पर किया गया है.

इस बीच, देह व्यापार ने बदलते समाज में नए रूप ले लिए हैं. आर्थिक उदारीकरण व नई आर्थिक गतिविधियों ने इस व्यापार को भरपूर प्रोत्साहन दिया है. समाजशास्त्री डॉ. के.के. मुखर्जी ने सर्वे के नतीजों के आधार पर बताया है कि देश में तेज़ी से हो रहे जनसंख्या के स्थानांतरण, पलायन, वैश्वीकरण के कारण पर्यटन, होटल उद्योग में वृद्धि होने से लोगों की सेक्स संबंधी ज़रूरतें और मान्यताएं बदली हैं. देह व्यापार को इनसे भी बढ़ावा मिला है.

आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल में देश की कुल वेश्याओं की एक चौथाई संख्या है. लेकिन कमाई के लिहाज़ से दिल्ली और मुंबई का कारोबार सबसे अधिक है. बांग्लादेश और नेपाल से देह व्यापार के लिए आने वाली लड़कियां कोलकाता, मुंबई, दिल्ली जैसे महानगरों को अपनी पहली पसंद मानती हैं.

इस सर्वेक्षण में यह भी बताया गया है कि सड़कों, घरों और वेश्यालयों में देह व्यापार करने वाली महिलाओं की मासिक आमदनी दो से 20 हजार रुपये तक है. इस व्यापार में दलालों–संरक्षकों की आमदनी वेश्याओं की आमदनी से कहीं ज़्यादा है. इस धंधे में सफ़ेदपोश कॉलगर्ल तो प्रतिमाह 40 हज़ार से एक लाख रुपये तक कमा लेती है. पांच सितारा होटलों और अमीरों के गेस्ट हाउस और आरामगाह में जाने वाली युवतियों की आमदनी तो कहीं–कहीं 50 हज़ार से लेकर एक लाख रुपये प्रतिदिन तक होती है. धर्मनगरी वाराणसी, हरिद्वार, ऋषिकेश, पुष्कर, उज्जैन, नासिक आदि भी देह व्यापार की मंडियों के लिए बदनाम हैं. गोवा तो देसी–विदेशी देह व्यापार के लिए पर्यटकों की पसंद ही बना हुआ है. उधर, उत्तर प्रदेश में कानपुर, वाराणसी, इलाहाबाद, झांसी, आगरा और मेरठ जैसे शहरों में सक्रिय वेश्याओं और देह व्यापार करने वाली महिलाओं के समूह में 75 से 80 प्रतिशत पिछड़ी व दलित जातियों की महिलाएं ही हैं. यही हाल दक्षिण के राज्यों में है.

देह व्यापार में सर्वधर्म समभाव आश्चर्यजनक रूप से सही में दिखाई देता है. हैदराबाद में देह व्यापार करने वाली महिलाओं में मुस्लिमों की संख्या ज़्यादा है, लेकिन इसके ख़िलाफ़ कभी कोई आवाज़ नहीं उठाई जाती. अध्ययन से पता चला है कि लड़कियों को रोज़गार या देह व्यापार के लिए खाड़ी के देशों में भेजने के लिए फ़र्ज़ी निकाह तक कराए जाते हैं. निकाह से पहले बूढ़े, अपाहिज, निकम्मे पति के साथ लड़की का सौदा किया जाता हैं. ऐसे कई दलाल और फ़र्ज़ी शादी कराने वाले हैदराबाद में सक्रिय हैं. अरब देशों के अमीर शेख हैदराबाद को अपनी कामवासना शांति के लिए निरापद स्थान मानते हैं.

वैसे बहला–फुसला कर पड़ोसी देशों से भी महिलाओं और लड़कियों को भारत के ज़रिए अन्य देशों में इस घृणित पेशे में ढकेल दिया जाता है. मिसाल के तौर पर नेपाल और बांग्लादेश को लें. देह व्यापार के लिए नेपाल से हर साल औसतन 30 हज़ार किशोर, युंवतियां और महिलाएं भारत और दुनिया के कई अन्य देशों में भेजी जाती हैं. मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई आदि में नेपाली लड़कियों की मांग काफी है. कभी–कभार पुलिस की सक्रियता, सामाजिक दबाव या सरकारी शर्म से उपजी नैतिकता के कारण जब छापे पड़ते हैं, तो कुछ लड़कियां देहमंडी के जाल से छुटकारा पा लेती हैं, लेकिन नेपाल में सक्रिय दलालों के कारण यह देहमंडी कभी ख़ाली नहीं होती है.

अस्सी के दशक में जहां औसतन प्रतिवर्ष 15 हज़ार नेपाली लड़कियां भारत या भारत के रास्ते से दूसरे देशों में जाकर वेश्यावृत्ति करती थीं, वहीं आज नेपाल से लड़कियों का पलायन दोगुनी रफ़्तार से होने लगा है.

यही स्थिति बांग्लादेश की है. ग़रीबी, जब तब होने वाले प्राकृतिक प्रकोप, कृषि भूमि की कमी, सामाजिक–आर्थिक विकास की वृद्धि दर में लगातार गिरावट के कारण बांग्लादेश से स्त्री–पुरुष कामगारों का भारत व अरब देशों की ओर तेज़ी से पलायन हो रहा है. पलायन की इसी प्रक्रिया में 12 वर्ष से अधिक आयु की लड़कियां और स्त्रियां घरेलू और औद्योगिक कामगार के रूप में वैध–अवैध रूप से अपना देश छोड़कर भारत और एशियाई देशों में पहुंच जाती हैं. वहां देह व्यापार ही उनकी आजीविका का मुख्य साधन बन जाता है. भारत में तो अवैध बांग्लादेशी प्रवासियों की विकट समस्या है. दिल्ली, मुंबई और उत्तर व उत्तर पूर्वी राज्यों में अनुमान है कि एक करोड़ से ज़्यादा बांग्लादेशी प्रवासी है, जो अवैध रूप से भारत में बसे हुए हैं. प्रवासी महिलाएं और लड़कियां चोरी छुपे सस्ती दरों पर देह व्यापार के लिए उपलब्ध रहती हैं.

बहरहाल, घृणित और अनैतिक पेशे को कमाई के लिए सम्मान और मान्यता दिलाने के उद्देश्य से पश्चिमी संस्कृति के पोषकों और प्रचारकों ने दुनिया भर में देह व्यापार को क़ानूनी मान्यता दिलाने का अभियान चला रखा है. भारत में कुछ महानगरीय आधुनिकतावादी और बुद्धिजीवी समाज सुधारक वेश्या को सेक्स वर्कर या यौन कर्मी का नाम देकर इस पेशे को एक मान्य व्यवसाय का दर्जा दिलाना चाहते हैं. यूरोप और अमेरिका की देह व्यापार की मंडियों में वेश्या के लिए सेक्स वर्कर पद का उपयोग किया जाता है, क्योंकि वहां कई देशों और कई अमेरिकी प्रांतों में वेश्यावृत्ति को क़ानूनी मान्यता प्राप्त है और वहां का समाज भी इस पेशे से घृणा नहीं देखता है.

सांस्कृतिक प्रजनन की प्रक्रिया में मीडिया एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक की भूमिका अदा करता है. संचार क्रांति के इस युग में प्रिंट और इलेक्ट्रोनिक मीडिया, दोनों ही तरह–तरह से विभिन्न प्रकार के सेक्स और देह व्यापार के समर्थन में सक्रिय हैं. विज्ञापन के ज़रिए वे कमाई करते हैं और जनता को सेक्स बाज़ार की ताक़तों के मायाजाल में फांसने की भूमिका सहज ही अदा करते हैं. भारत में भी देह व्यापार को मान्यता दिलाने, समलैंगिक यौन संबंधों को वैध ठहराने के लिए संगठित तौर पर अभियान चल रहा है. लेकिन यह अभियान किसी समाज सुधार के लिए नहीं, बल्कि सेक्स बाज़ार के हित में ही चलाया जा रहा है. हमारी लोकतांत्रिक सरकार भी इस साज़िश को नज़रअंदाज कर रही है.

विनय दीक्षित

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सेक्स टूरिज़्म

पिछले एक दशक से दुनिया के संपन्न देशों में सेक्स टूरिज़्म एक संगठित कमाऊ उद्योग के रूप में फल–फूल रहा है. इस नए उद्योग को पर्यटन, होटल और सेक्स उद्योग ने मिल–जुलकर खड़ा किया है. यूरोप, अमेरिका, जापान और अरब देशों के धनी कामुक पर्यटकों को भारत व दक्षिण एशियाई देशों, लैटिन अमेरिकी देशों और अफ्रीकी देशों की सैर कराई जाती है और उनके सुख और आराम के लिए हर वस्तु और हर साधन उपलब्ध कराना पर्यटन संचालकों का दायित्व होता है. इसके बदले उन्हें भरपूर पैसा मिलता है. अमेरिका और यूरोपीय देश जहां दुनिया के ग़रीब और पिछड़े देशों को मानव अधिकार का उपदेश देकर उनके उत्पादन को नकारने के लिए कठोर प्रतिबंध लगाते हैं, वहीं इन देशों के धनी लोग पैसे के बल पर कम उम्र के बच्चों–बच्चियों और हर उम्र की महिला के साथ मनचाहा सेक्स सुख पाने के लिए अपने उद्योग को बढ़ावा भी दे रहे हैं. भारत के समुद्री तट के शहरों, श्रीलंका, मालदीव, थाईलैंड, सिंगापुर और दूसरे कई देशों में चाइल्ड सेक्स का व्यापार सेक्स टूरिज़्म के कारण ही पनप रहा है. अमेरिका और यूरोप में बच्चों के यौन शोषण को गंभीर दंडनीय अपराध माना है, लेकिन उन्हीं देशों में यह कारोबार फल–फूल रहा है और उन्हीं देशों के नागरिक दुनिया भर में इस अनैतिक और अमानवीय कारोबार को फैला रहे हैं.

कबूतरबाज़ी : एक संगठित उद्योग

ग़ुलामों की ख़रीद–बिक्री प्राचीनकाल से ही चली आ रही है. भारत और दूसरे कई देशों में युद्ध में पराजित जनता को विजेता अपना ग़ुलाम बनाते थे और ग़ुलामों का मनचाहा शोषण करते थे. प्राचीनकाल में कई क़बीलों और छोटे राज्यों में युद्ध स्त्रियों के लिए ही हुए, क्योंकि आक्रमण करने वाले क़बीले या राज्य में स्त्रियों की कमी हुआ करती थी. यह प्रथा मध्यकाल तक चलती रही. लेकिन यूरोपीय देशों के वैश्विक अभियान के दौर में ग़ुलामों के व्यापार ने एक नया क्रूर, दानवी किंतु कमाऊ रूप ले लिया. पंद्रहवीं–सोलहवीं सदी में पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डच नाविकों ने अफ्रीका, एशिया और अमेरिका के तटों पर अपनी विजय के झंडे गाड़े. उन्हीं नाविकों ने लंबी थकाऊ समुद्री यात्रा और परिवार से लंबे अलगाव से परेशान होकर इन देशों की स्त्रियों से शारीरिक संपर्क बनाए, फिर उन्हें अपने साथ ले आए. उन स्त्रियों को रंगभेद के कारण यूरोप में स्वीकार नहीं किया गया, तब उन्हें श्रम के लिए ज़रूरतमंदों को बेच दिया गया. इसके बाद खेती, खनिकर्म, जंगल कटाई जैसे श्रम साध्य कार्यों के लिए मेहनती, सस्ते मज़दूरों की ज़रूरत होने पर नाविकों ने अफ्रीका और मध्य अमेरिका से ग़ुलाम लाकर यूरोप की मंडियों में बेचने का धंधा किया. बाद में अमेरिका में यूरोप वासियों के बस जाने पर अफ्रीकी ग़ुलामों की मांग और बढ़ने लगी. एशिया में नए देशों पर क़ब्ज़ा करने के बाद ग़ुलामों का कारोबार और भी फलने–फूलने लगा. अंग्रेजों ने कई द्वीपों और कई छोटे देशों में खेती के लिए मज़दूर के रूप में भारत से ग़रीब जनता को ग़ुलाम बनाकर जहाजों पर लादकर भेजने का काम किया. मारीशस, फिजी आदि कई देशों में उत्तर भारतीय ग़ुलामों को खेती, खनन और उद्योग से संबंधित कारोबारियों को बेचा गया था. उन ग़ुलामों के वंशज आज इन देशों में स्वतंत्र और ख़ुशहाल जीवन जी रहे है. यूरोप के नाविकों के लिए ग़ुलाम बेचने का कारोबार बड़ा ही लाभप्रद रहा. आर्थिक वैश्वीकरण ने श्रम और सेक्स के लिए इंसान के कारोबार या आधुनिक ग़ुलामों के कारोबार को संगठित रूप से प्रोत्साहन दिया है. भारत में कबूतरबाज़ी नाम से बदनाम इस कारोबार की पूरी दुनिया में चिंता है. संयुक्त राष्ट्र संघ ने 155 देशों से सूचनाएं एकत्रित कर एक रिपोर्ट जारी की है. इसमें बताया गया है कि कबूतरबाज़ी के मामलों में 79 प्रतिशत महिलाएं और कम उम्र की लड़कियां होती है, जिन्हें सस्ते श्रम और यौन शोषण के लिए एक से दूसरे देश ले जाया जाता है. केवल पुरुष ही नहीं, बल्कि महिलायें भी इस व्यापार में दलाल और हिस्सेदार के रूप में सक्रिय है. कबूतरबाज़ी का कारोबार कुवैत, ओमान, कतार, सऊदी अरब, ब्राजील, चीन और भारत में सबसे ज़्यादा होता है. बांग्लादेश और नेपाल की कबूतरबाज़ी भारत के ज़रिए ही होती है. इनके अलावा अल्जीरिया, क्यूबा, फिजी, ईरान, म्यामार (बर्मा) मालदीव, उत्तर कोरिया, सूडान और सीरिया जैसे देशों से भी कबूतरबाज़ी होती है. रूस में तो कबूतरबाज़ी के संगठित गिरोह तक सक्रिय है. भारत के असम, मणिपुर और केरल में कबूतरबाज़ी के संगठित गिरोह सक्रिय है. इनमें सक्रिय कुछ लोगों की जब–तब धर–पकड़ भी की गई है. असम में पिछले सात वर्षों में कबूतरबाज़ी के मामलों में 413 व्यक्तियों के ख़िलाफ़ मामले दर्ज़ हुए हैं. लेकिन पुलिस मानती है कि राज्य में आश्चर्यजनक रूप से ग़ायब होने वाले बच्चों, कम उम्र की लड़कियों और महिलाओं की संख्या लगातार बढ़ रही है. पिछले आठ वर्षों में ग़ायब हुई सात हज़ार से ज़्यादा महिलाओं और बच्चियों का पता आज तक नहीं चल पाया है.

भारत सरकार और मानव अधिकार आयोग भी इस समस्या के प्रति चिंतित है. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने कुछ वर्ष पहले इस समस्या के अध्ययन के लिए एनजीओ के सहयोग से एक सर्वे कराकर रिपोर्ट प्रकाशित की थी. इसमें कहा गया था कि भारत में गुम होने वाले बच्चों, बच्चियों और महिलाओं में से 30 से 40 प्रतिशत का कभी पता ही नहीं चलता है. देह व्यापार के लिए इन्हीं गुमशुदा लोगों का इस्तेमाल होता है.

कबूतरबाज़ी दरअसल 21वीं सदी तक आते–आते 15वीं और 16वीं सदी के ग़ुलामों के व्यापार का ही एक नया रूप है. विगत वर्ष भारतीय जनता पार्टी के एक संसद सदस्य विमान में एक महिला को पत्नी बताकर विदेश ले जाते पकड़े गए थे. प्रसिद्ध पंजाबी गायक दलेर मेंहदी भी कबूतरबाज़ी में पकड़े जा चुके हैं.

वैसे देह व्यापार और कबूतरबाज़ी का संबंध आतंकवाद से भी जुड़ा हुआ है. पैसा कमाने, दूसरे देशों में जासूस भेजने, स्त्रियों का अपहरण कर उन्हें देह व्यापार में धकेलने, विदेशों में बसने के लिए फ़र्ज़ी विवाह करने के उद्देश्य से आतंकवादी गिरोह कबूतरबाज़ी का सहारा लेते है. अफ़ग़ानिस्तान, पाक अधिकृत कश्मीर, पाकिस्तान, बांग्लादेश से मुस्लिम युवतियों और महिलाओं को आतंकवादी कबूतरबाज़ी के ज़रिए ही भेजते है.

सांसद-विधायक फंड में फंस गई नीतीश सरकार

सुरेंद्र किशोर

विधायक व सांसद क्षेत्र विकास निधि की उपयोगिता को लेकर बिहार में इन दिनों बहस चल रही है. इस बहस की शुरुआत हाल ही में बिहार विधानसभा में हुई. अब इस बहस को राज्य का मीडिया भी चला रहा है. चौक-चौराहों पर भी इस फंड के गुण-दोष को लेकर जनता में चर्चा तेज़ है. रायशुमारी से यह पता चल रहा है कि अधिकतर विधायक इसे जारी रखना चाहते हैं, पर अधिकतर जनता इस फंड के ख़िलाफ़ है. अधिकतर विधायक कहते हैं कि इससे जनता के काम हो जाते हैं. दूसरी ओर अधिकतर जनता कह रही है कि अधिकतर विधायकों ने इस फंड को लूट का ज़रिया बना दिया है. इससे राजनीति दूषित हो रही है. प्रशासन के समक्ष अधिकतर विधायक बेनकाब हो रहे हैं. इससे प्रशासन में विधायकों का कोई भय नहीं रहा. इससे भी सरकारी भ्रष्टाचार बढ़ रहा है.

इस फंड के दुरुपयोग की शिकायतें तो बहुत पहले से ही आती रही हैं, पर गत 14 जुलाई को इस पर चर्चा तेज़ हो गई जब बिहार विधानसभा में राष्ट्रीय जनता दल (राजद) के सदस्यों ने इस फंड को समाप्त करने की अपनी मांग के समर्थन में सदन से वाकआउट कर दिया. इस पर मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने स्पीकर उदय नारायण चौधरी से कहा कि हम भी इस विधायक कोटा को ख़त्म करने के पक्षधर हैं. इसलिए आपसे अनुरोध है कि आप इस फंड को समाप्त करने के लिए सर्वसम्मति बनाने के लिए सर्वदलीय बैठक बुला लें. जब स्पीकर ने 15 जुलाई को सर्वदलीय बैठक बुलाई तो राजद के सदस्यों ने उलटे स्पीकर से एक सवाल पूछ दिया. राजद ने पूछा कि हम तो सदन में अपनी तरह-तरह की मांगों को पूरा करने के लिए आवाज़ उठाते रहते हैं, वाकआउट करते रहते हैं, पर हमारी इसी ख़ास मांग को लेकर सर्वदलीय बैठक क्यों बुला ली गई? क्या इसलिए कि मुख्यमंत्री इस फंड को समाप्त करना चाहते हैं और इस पर वह सर्वदलीय मुहर लगवाना चाहते हैं?

फोटो- सुनील मल्होत्रा

राजद के इस अचानक बदले रुख़ के बाद इस फंड पर मीडिया में बहस चल पड़ी. समाज के विभिन्न तबकों के लोगों के विचार प्रकाशित होने लगे. पक्ष-विपक्ष के विधायक भी अपनी राय देने लगे. बहस से यह बात भी खुल कर सामने आई कि राजद कौन कहे, राजग के भी अनेक विधायक इस फंड की समाप्ति के विरोधी हैं. यानी ख़ुद मुख्यमंत्री के खेमे में भी इसको लेकर मतभेद है. फिर नीतीश कुमार इस फंड की समाप्ति पर सर्वसम्मति कैसे बनवा पाएंगे? दरअसल यह सांसद-विधायक निधि पहले तो राजनीति में नैतिक गिरावट की उत्प्रेरक बनी, अब वह हत्याओं का भी कारण बन रही है. हाल की एक घटना से बिहार के अनेक लोग चौंक उठे. सांसद निधि में कमीशन को लेकर हुए झगड़े ने एक जान ले ली. इस हत्याकांड में एक बड़े नेता भी अभियुक्त बन गए. सांसद-विधायक फंड को लेकर बिहार में जहां-तहां छिटपुट हिंसक घटनाएं तो पहले भी होती रही हैं, पर अब तो इस फंड के घोटालों के कारण बहुमूल्य जानें भी जाने लगीं और महत्वपूर्ण नेताओं का अच्छा ख़ासा राजनीतिक करियर बर्बाद होने लगा. इसके बावजूद, इस फंड के प्रति अधिकतर विधायकों- सांसदों में व्याप्त लोभ से स्थिति बिगड़ती जा रही है. कई बड़े नेता और जन प्रतिनिधि ऊपर-ऊपर तो इस फंड की समाप्ति के पक्ष में बयान दे देते हैं, पर इसे समाप्त करने का मौका आता है तो वे इस मुद्दे पर अपनी सहमति नहीं देते. इस फंड ने विभिन्न दलों के अनेक ठोस राजनीतिक कार्यकर्ताओं को अभिकर्ता यानी ठेकेदार बना दिया है. वास्तविक कार्यकर्ता किनारे होते जा रहे हैं. राजनीति दूषित होती जा रही है. राजनीति का स्वरूप ही बदल रहा है. इसे बदलने का श्रेय इस फंड को है.

संभवत: इसीलिए मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने इसे समाप्त करने की राजद की मांग को स्वीकार करने की घोषणा कर दी थी, पर उन्हें पता ही नहीं था कि राजद ऊपरी मन से ही समाप्ति की मांग कर रहा था.

यहां एक सवाल मुख्यमंत्री से है. यदि मुख्यमंत्री इस फंड को बुरा मानते हैं तो वह सर्वसम्मति की प्रतीक्षा किए बिना इसे समाप्त कर देने का फ़ैसला क्यों नहीं करते? उन्होंने बिना सर्वसम्मति बनाए ही कई बड़े-बड़े काम किए हैं. उन्होंने क़रीब 34 हज़ार छोटे-बड़े अपराधियों को त्वरित अदालतों के ज़रिए सजाएं दिलवाईं. इन अपराधियों में विभिन्न दलों से जुड़े लोग भी हैं. क्या इस काम के लिए वह सर्वसम्मति चाहते तो ऐसा मुमकिन नहीं होता? इसीलिए यदि राजनीति को और भी पतित होने से बचाना है तो मुख्यमंत्री को एक झटके में इसे अपनी सरकार से समाप्त करा देना होगा. हां, अगर उन्हें इस मामले में अपने ही समर्थक विधायकों और सांसदों से डर लगता हो तो बात कुछ और है. याद रहे कि यदि बिहार में सालाना एक करोड़ रुपये का यह विधायक फंड समाप्त कर दिया गया तो केंद्र की मनमोहन सरकार पर भी यह दबाव पड़ेगा कि वह भी दो करोड़ सालाना वाले सांसद फंड को भी समाप्त कर दे. वीरप्पा मोइली के नेतृत्व में गठित द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने वर्ष 2007 के प्रारंभ में ही केंद्र सरकार से यह सिफ़ारिश की है कि एम.पी.विधायक फंड को समाप्त कर दिया जाना चाहिए. इस सिफ़ारिश को नज़रअंदाज़ करते हुए भारत सरकार के सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय ने वित्त मंत्रालय को पिछले साल ही सांसद विकास निधि को दो करोड़ रुपये से बढ़ाकर पांच करोड़ कर देने का प्रस्ताव भेजा है. इस प्रस्ताव को इस देश की राजनीति के लिए दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है. हालांकि मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार पर 2004 से ही यह दबाव बनता आ रहा है कि इस फंड को चार करोड़ कर दिया जाए. इस संबंध में 2004 के अंत में मनमोहन सरकार ने यह तर्क दिया था कि सांसद निधि के तहत 21 सौ करोड़ रुपये से अधिक राशि अभी तक ख़र्च ही नहीं हो सकी है. फिर इसे बढ़ाने का क्या फ़ायदा? अभी तक तो मनमोहन सरकार फंड बढ़ाने के पक्षधरों के दबाव में नहीं आई है. आगे पता नहीं क्या होगा! इस फंड में से एक बड़ी राशि इसलिए भी ख़र्च नहीं हो पाती, क्योंकि कई सांसद यही तय नहीं कर पाते कि इस फंड का ठेकेदार वे अपने किस कार्यकर्ता या रिश्तेदार को बनाएं. या फिर कई बार कमीशन की लेनदेन को लेकर बात नहीं बनती. हालांकि नियमत: ठेकेदार तय करने का अधिकार सासंद या विधायक को नहीं हैं.पर अनौपचारिक रूप से बिहार में तो आम तौर पर जन प्रतिनिधि ही ठेकेदार भी तय कर देते हैं. इस संबंध में एक दिलचस्प मामला हाल में देखने को मिला, जब बिहार के एक पूर्व विधायक चुनाव प्रचार में निकले तो उस निर्दलीय उम्मीदवार का साथ देने के लिए सिर्फ़ उनके फंड के दो ठेकेदार ही थे. वह बुरी तरह चुनाव हार गए

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अपनी भविष्यवाणी याद कीजिए प्रधानमंत्री जी

फोटो- प्रभात पाण्डेय

अब गेंद मनमोहन सरकार और नीतीश सरकार के पाले में है. अच्छा हो कि वे अधिकांश नेताओं और लोकतंत्र में गिरती आम लोगों की आस्था को और अधिक गिरने से रोक लें. क्या वे रोक पाएंगे? इस संबंध में सरकार अब भी कोई निर्णय करके सुप्रीम कोर्ट को सूचित कर सकती है. यदि केंद्र सरकार ने इस दिशा में कोई कठोर क़दम उठाया तो उसे जनता में लोकप्रियता भी मिलेगी और राज्यों को भी इसी दिशा में चलना पड़ेगा.

विधायक व सांसद क्षेत्र विकास निधि की शुरुआत की कहानी भी कम दिलचस्प नहीं है. 1993 में शेयर दलाल हर्षद मेहता को लेकर राम जेठमलानी ने आरोप लगाया था कि उसने तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंह राव को एक करोड़ रुपये की रिश्वत दी. इसके ठीक बाद राव सरकार ने इस फंड की शुरुआत करा दी. यह फंड 1993 में तब शुरू किया गया, जब नरसिंह राव मंत्रिमंडल को लोकसभा में पूर्ण बहुमत हासिल नहीं था. इस सरकार को अनेक सांसदों को ख़ुश करना था. इस संबंध में संयुक्त संसदीय समिति ने 23 दिसंबर 1993 को क़रीब चार बजे अपनी सिफ़ारिश सदन में पेश की और सरकार ने उसी दिन छह बजे इस सिफ़ारिश को स्वीकार कर लेने के अपने निर्णय की घोषणा कर दी. यह भी कहा जाता है कि नरसिंह राव ने सोचा कि जब उन्हें एक करोड़ के लिए बदनाम किया गया तो एक-एक करोड़ रुपये हर साल यानी पांच साल में पांच करोड़ ख़र्च करने का मालिक बना कर अधिकतर सांसदों को ही क्यों न शक़ के घेरे में डाल दिया जाए. यदि राव साहब की ऐसी मंशा नहीं भी हो, तब भी यह आशंका सही साबित हुई है. यह फंड राजनीति की शुचिता के लिए ख़तरनाक साबित हो रहा है. हाल के समय में हद तो तब हो गई जब मीडिया के एक स्टिंग ऑपरेशन के दौरान लोगों ने अपने टीवी सेटों पर एक सांसद को इस फंड के एवज में कमीशन लेते देखा था. इससे पहले से भी इसकी बुराइयां सामने आने लगी थीं. सी.ए.जी.ने 1998 में ही इस फंड के भारी दुरुपयोग की रपट सरकार को दे दी थी. संभवत: इसीलिए जब इसे एक करोड़ से बढ़ा कर दो करोड़ रुपये कर दिया गया तो 10 मार्च 2003 को राज्यसभा में प्रतिपक्ष के नेता मनमोहन सिंह ने अटल सरकार से कहा था कि यदि आप चीज़ों को इसी रास्ते जाने देंगे तो नेताओं और लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता विश्वास खो देगी. पर आश्चर्य की बात है कि ख़ुद मनमोहन सरकार आज तक वीरप्पा मोइली की सिफ़ारिश को लागू करने की हिम्मत नहीं जुटा सकी. अब गेंद मनमोहन सरकार और नीतीश सरकार के पाले में है. अच्छा हो कि वे अधिकांश नेताओं और लोकतंत्र में गिरती आम लोगों की आस्था को और अधिक गिरने से रोक लें. क्या वे रोक पाएंगे? इस संबंध में सरकार अब भी कोई निर्णय करके सुप्रीम कोर्ट को सूचित कर सकती है. यदि केंद्र सरकार ने इस दिशा में कोई कठोर क़दम उठाया तो उसे जनता में लोकप्रियता भी मिलेगी और राज्यों को भी इसी दिशा में चलना पड़ेगा. यह बात याद रखने की है कि दुनिया के किसी देश में इस तरह की किसी सांसद-विधायक निधि का कोई प्रावधान ही नहीं है. इस फंड को समाप्त करने के लिए बारी-बारी से जितने नेताओं ने अपनी राय ज़ाहिर कर दी है, उससे दलों के बीच आम राय बनाने में भी सुविधा होगी. लेकिन तभी, जब केंद्र चाहे. बिहार के नेता नीतीश कुमार,राम विलास पासवान और लालू प्रसाद बहुत पहले ही यह कह चुके हैं कि यह फंड बंद हो जाना चाहिए. 30 अगस्त 2002 को तत्कालीन रेल मंत्री नीतीश कुमार ने पटना में कहा था कि सांसद-विधायक फंड को बंद कर देना चाहिए, क्योंकि इसको लेकर मारामारी हो रही है. 3 फरवरी 2007 को तत्कालीन रेल मंत्री लालू प्रसाद ने बिहार के वैशाली जिले के बिदुपुर की एक सभा में कहा था कि सांसद-विधायक कोष को समाप्त कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि इस फंड के ठेकेदारों के कारण ही बिहार में हमारी सत्ता चली गई. क़रीब चार साल पहले पूर्व सांसद एरा सेझियन ने अपने विस्तृत अध्ययन के बाद जो रपट तैयार की थी, उससे भी यह साफ था कि जिस घोषित उद्देश्यों को ध्यान में रख कर यह फंड शुरू किया गया था, वे पूरे नहीं हो रहे हैं. हाल में सी.पीआई के महासचिव ए.बी वर्धन ने कहा था कि वाम दल शुरू से ही इस योजना के विरोधी रहे हैं.

वैसे तो इस देश की विभिन्न सरकारों में व्याप्त भ्रष्टाचारों की कहानी नई नहीं है, पर इस सांसद फंड की शुरुआत से पहले आम जनता अपने सांसदों-विधायकों से यह उम्मीद करती थी कि ज़रूरत पड़ने पर किसी प्रशासनिक भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए सांसद-विधायक की मदद ली जा सकती है. पर जब ख़ुद अधिकतर सांसदों और विधायकों द्वारा ही संबंधित अधिकतर अफसरों से सांठगांठ करके इस फंड के दुरुपयोग की ख़बरें आने लगीं तो आम लोगों में नेताओं और लोकतंत्र के प्रति आस्था कम होने लगी. ऐसी ही आशंका तो क़रीब छह साल पहले मनमोहन सिंह ने राज्यसभा में व्यक्त की थी. अपनी ही भविष्यवाणी आपको याद है प्रधानमंत्री जी?

सु. कि.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

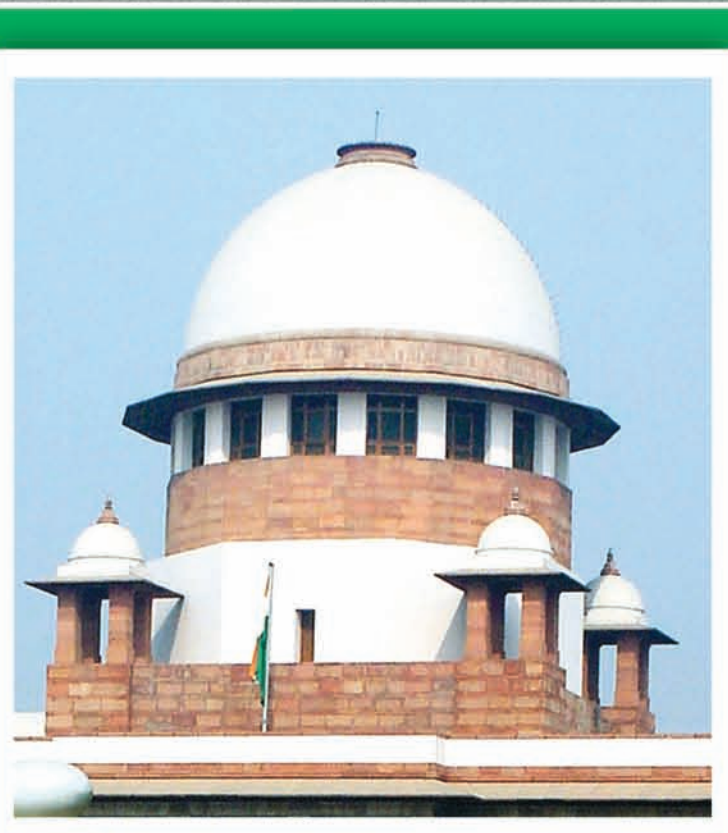

आने ही वाला है सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला

इस फंड के ख़िलाफ़ अदालत में याचिका दायर की जा चुकी है. सांसद स्थानीय विकास कोष योजना की संवैधानिकता को लेकर दायर याचिका पर सुप्रीम कोर्ट का निर्णय आने ही वाला है. यदि निर्णय इस कोष को जारी रखने के पक्ष में आ गया तो मंत्रालय की गतिविधि को देखते हुए संकेत हैं कि केंद्र सरकार इस बार इसे बढ़ा कर चार या पांच करोड़ कर देगी. इसलिए कि यह योजना अधिकतर सांसदों के बीच काफी लोकप्रिय है. इसे समाप्त करने की हिम्मत किसी भी मिली जुली सरकार के मुखिया को संभवत: नहीं होगी. इसे अटल बिहारी सरकार भी समाप्त नहीं कर सकी थी, जबकि उनसे साफ-साफ यह कहा गया था कि इस फंड में कमीशन के कारण संघ से प्रतिनियुक्ति पर भाजपा में आए कई स्वयंसेवक भी बेईमान हो रहे हैं. पूरी राजनीति दूषित हो रही है. इस तर्क के आधार पर इस फंड को समाप्त कर देने के लिए राजग के 40 सांसद तत्कालीन प्रधानमंत्री वाजपेयी से मिले थे. वे इस संबंध में कोई निर्णय करने ही वाले थे कि राजग के ही क़रीब सवा सौ सांसदों की ओर से विजय गोयल ने अटल जी से मिल कर इस फंड को जारी रखने का अनुरोध किया. अब भला अटल जी क्या करते! चुप रह गए. यह बात कहने वाले आज अनेक लोग मिल जाएंगे कि हाल के वर्षों में इस देश की राजनीति के नैतिक पतन के लिए यदि कोई एक कारण सर्वाधिक ज़िम्मेदार साबित हुआ है तो वह सांसद-विधायक क्षेत्र विकास निधि का भ्रष्टाचार ही है. यह बात भी सही है कि कुछ थोड़े से सांसद या विधायक इस फंड से कमीशन नहीं लेते, पर चूंकि अधिकतर सांसदों-विधायकों पर इसके दुरुपयोग के आरोप लगते रहे हैं, इसलिए इसको लेकर आम जनता में सांसदों व विधायकों की इज़्ज़त घटी है. यदि इतना ही होता तब भी गनीमत थी. पर इस में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण नौकरशाही पर से सांसदों और विधायकों की नैतिक धाक भी समाप्त होती जा रही है. इस निधि के पैसों में से कमीशन लेने वाले सांसदों और विधायकों में यह नैतिक साहस कहां बचता है कि वे सरकार की ओर से चलाए जा रहे दूसरे विकास और कल्याण कार्यों में बढ़ रहे भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ आवाज उठा सकें?

सु. कि.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

गोरखालैंड की आग से झुलस रही है पहाड़ों की रानी

दार्जिलिंग बंद के दौरान की जा रही आगजनी

बिमल राय

टाइगर हिल का सूरज आज भी उतना ही लाल लगता है, पर अब उसने जैसे आग के गोले की शक्ल ले ली है. पिछले दो सालों से उठीं चिनगारियों से बर्फीली पहाड़ियां सुलग रही हैं. पर्यटन और चाय बागान–इन दो खंभों पर टिकी यहां की अर्थव्यवस्था पूरी तरह चरमरा गई है. 2010 तक गोरखालैंड मिलने की आस में आधा पेट खाना खाकर भी यहां के लोग एक ऐसी जंग लड़ रहे हैं, जो फ़िलहाल मुमकिन नहीं लगती. राज्य सरकार की सहमति के बिना अलग राज्य बन ही नहीं सकता. 1986 से अगस्त 1988 तक दो वर्षों की ख़ूनी जंग में 1200 लोगों की आहूति देकर भी कभी गोरखाओं के हीरो रहे सुभाष घीसिंग गोरखालैंड नहीं दिलवा सके. दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल की कुर्सी पर 20 साल रहने के बावजूद वह गोरखाओं की माली हालत नहीं बदल सके. 11 मार्च 2008 को एक दिन ऐसा भी आया जब सुभाष घीसिंग को इस्तीफ़ा देकर सिलीगुड़ी में एक महीने तक वनवास झेलना पड़ा. गोरखाओं का मसीहा बदल गया. पिछले दो सालों से विमल गुरुंग के गोरखा जन मुक्ति मोर्चे की अगुआई में नए सिरे से इस मांग को उठाया जा रहा है. यह तो गोरखाओं को भी पता नहीं कि अपनी वीरता व ईमानदारी के लिए पूरी दुनिया में नाम और इज़्ज़त कमानेवाले गोरखाओं की क़िस्मत में क्या लिखा है?

अपने माथे से विदेशी (नेपाली) होने का कलंक धोने और गोरखा स्वाभिमान की इस लड़ाई का भाजपा को छोड़ कर राज्य की सभी पार्टियां विरोध कर रही हैं. ज़ाहिर है कांग्रेस व तृणमूल कांग्रेस भी. आमरा बंगाली, जन चेतना मंच, जन जागरण मंच, बांग्ला ओ बांग्ला भाषा बचाओ कमेटी व शिवसेना जैसे संगठन भी बंगाल का एक और विभाजन नहीं होने देने के लिए ख़ून तक बहाने को तैयार हैं.

घीसिंग से बग़ावत कर जब विमल गुरुंग ने 2007 के आख़िरी महीनों में गोरखा जनमुक्ति मोर्चे का गठन किया था, तो 2010 तक गोरखालैंड हासिल करने का वादा भी किया. रास्ता उन्होंने अहिंसक ही रखा. पहले लोगों को बिजली और फोन बिल नहीं जमा करने को कहा और एक समय ऐसा भी आया, जब उन्होंने पहाड़ की गाड़ियों के नंबर प्लेट पर गोरखालैंड यानी डबल्यूबी की जगह जी लिखना अनिवार्य कर दिया. इसे लेकर कुछ दिनों तक बवाल मचा रहा. इसी दौर में सरकारी कार्यालयों के नामपट्टों पर पश्चिम बंगाल की जगह गोरखालैंड लिखने का काम शुरू किया गया. बेमियादी बंद का अपील आम बात हो गई. इसके जवाब में गोरखालैंड विरोधी संगठनों ने पहाड़ की आर्थिक नाकेबंदी भी की. 2008 में 12 और 13 जून को दो दिनों की आर्थिक नाकेबंदी भी हुई. वैसे बंद की अपील होते ही पहाड़ पर वाहनों का आना–जाना बंद हो जाता है और इससे सबसे ज़्यादा नुक़सान पहाड़वासियों को ही हो रहा.

पहाड़ पर पूरे गोरखाओं का समर्थन विमल गुरुंग को मिला है और सुभाष घीसिंग हाशिए पर चले गए हैं. दार्जिलिंग, कर्सियांग और कालिंपोंग अनुमंडलों का क्षेत्रफल 1600 वर्ग किलोमीटर है और आठ लाख की कुल आबादी में लेप्चा व भूटिया समुदायों को मिलाकर गोरखाओं की आबादी सात लाख है. इधर, 900 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले सिलीगुड़ी अनुमंडल की आठ लाख की आबादी में 80 प्रतिशत बंगाली हैं. विमल गुरुंग डुआर्स व तराई को भी गोरखालैंड की सीमा में रखना चाहते हैं, हालांकि संकोश नदी के पश्चिम में मालबाज़ार व नागराकाटा को मिलाकर बने डुआर्स इलाक़े की एक लाख की आबादी में गोरखा 30 फ़ीसदी ही हैं और बहुमत आदिवासियों का है, जिसे कभी अंग्रेजों ने चाय बागानों में काम करने के लिए झारखंड से बुलाया था. शुरू–शुरू में आदिवासी विमल गुरुंग के साथ थे, पर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी व वाममोर्चे के घटक दलों के काडरों के प्रभाव से वहां इसके ख़िलाफ़ माहौल तैयार किया गया. आदिवासी विकास परिषद ने भी अब विमल गुरुंग से नाता तोड़ लिया है. पिछले लोकसभा चुनावों में माकपा की लाख कोशिशों के बाद दार्जिलिंग सीट से खड़े भाजपा प्रत्याशी जसवंत सिंह के भारी मतों के अंतर से जीत ने साबित किया कि दार्जिलिंग जिले में बहुमत किसका है. यही वजह है कि विमल गुरुंग ने पहाड़ की पूरी प्रशासनिक मशीनरी को लंबे अरसे से अस्त–व्यस्त कर रखा है.

हालांकि एक तरह से देखें तो नुक़सान वहां की आबादी का ही है. केवल इसी साल के पिछले छह महीनों में गोरखलैंड आंदोलन से होटल व पर्यटन उद्योग को 20 करोड़ से ज़्यादा का नुक़सान हो चुका है. पश्चिम बंगाल पर्यटन विकास निगम के मुताबिक केवल दार्जिलिंग में पिछले दो महीनों में होटलों की बुकिंग में 10 प्रतिशत की गिरावट आई है, जबकि औसत बुकिंग 40 प्रतिशत की होती थी. निगम के प्रबंध निदेशक टी वी एन राव के मुताबिक दार्जिलिंग कालिंपोंग और कर्सियांग में उसके 24 पर्यटक लॉजों की आमदनी में 30 प्रतिशत की गिरावट आई है. विज्ञापनों और पर्यटन विकास की गतिविधियों पर ख़र्च को

आदिवासियों व नेपालियों के बीच मनमुटाव पैदा करने में एक हद तक कामयाब हुई सरकार ने डुआर्स के आदिवासियों के साथ भी न्याय नहीं किया है. इसी साल फरवरी में आदिवासी विकास परिषद के नेताओं ने मुख्यमंत्री से मिलकर डुआर्स की पीड़ा का बयान किया. परिषद के मीडिया प्रभारी राजू बारा ने बताया कि डुआर्स के आदिवासी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से काफी पिछड़े हुए हैं.

शामिल किया जाए तो नुक़सान छह करोड़ के आसपास आता है. 7 फरवरी 2008 को गृह मंत्रालय की स्थायी संसदीय समिति के सामने पेश हुए डुआर्स जन संघर्ष मोर्चा के अध्यक्ष मनोज तिग्गा ने आदिवासियों व गोरखाओं की पीड़ा पर तल्ख टिप्पणी की. उन्होंने कहा कि गोरखा और आदिवासियों को डुआर्स की ज़मीन जोतने के लिए दो बैलों की तरह इस्तेमाल किया जाता रहा हैं. यहां हिंदी माध्यम से कालेज की शिक्षा हासिल करने की कोई सुविधा नहीं है. अगर गोरखा कोई मांग करते हैं तो कहा जाता है कि नेपाली नेपाल चले जाएं और आदिवासी झारखंड. चाय बागानों के 98 प्रतिशत मज़दूर आदिवासी और गोरखा हैं. बागान के अलावा कोई और उद्योग नहीं है. बागान श्रमिकों की दैनिक मज़दूरी भी 50 रुपये है. यानी सरकार की ओर से घोषित निम्नतम मज़दूरी से भी कम.

आदिवासियों व नेपालियों के बीच मनमुटाव पैदा करने में एक हद तक कामयाब हुई सरकार ने डुआर्स के आदिवासियों के साथ भी न्याय नहीं किया है. इसी साल फरवरी में आदिवासी विकास परिषद के नेताओं ने मुख्यमंत्री से मिलकर डुआर्स की पीड़ा का बयान किया. परिषद के मीडिया प्रभारी राजू बारा ने बताया कि डुआर्स के आदिवासी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए हैं. बेरोज़गारी चरम पर है. यहां तक कि पीने का पानी भी पर्याप्त नहीं मिलता. हिंदीभाषी आदिवासियों के लिए हिंदी हाईस्कूल नहीं हैं. जलपाईगुड़ी जिला प्राइमरी स्कूल काउंसिल के तहत चलाए जा रहे हिंदी व नेपाली माध्यम के सकूलों में बांग्लाभाषी शिक्षकों की बहाली की जा रही है. यहां से जीतने वाले जनप्रतिनिधि भी अपनी पार्टियों के बड़े नेताओं के हाथ की कठपुतली बने हुए हैं.

दार्जिलिंग के पिछड़ेपन की चर्चा पर शहरी विकास मंत्री अशोक भट्टाचार्य मानव विकास सूचकांक का हवाला देते हैं, जिसमें बताया गया है कि दार्जिलिंग विकास के मामले में राज्य में चौथे स्थान पर है और यह पुरुलिया और वीरभूम जिलों से ज़्यादा विकसित है. यह सब कहने में सुविधाजनक है, क्योंकि सिलीगुड़ी अनुमंडल भी दार्जिलिंग जिले में है और पिछले 10 सालों में जिले के विकास का ज़्यादातर हिस्सा यहीं ख़र्च हुआ है. बजट प्रावधानों से इस बात को ठीक तरह से समझा जा सकता है. दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल अधिनियम, 1988 के तहत 2007–08 के लिए दार्जिलिंग कालिंपोंग और कर्सियांग अनुमंडलों के विकास के लिए मात्र 44 करोड़ का प्रावधान रखा गया, इसमें आधा योगदान केंद्र और आधा राज्य का था. इसी अवधि में सिलीगुड़ी नगर निगम के लिए राज्य सरकार ने 104.33 करोड़ का प्रावधान किया. एक और मिसाल लें. पूरे सिक्किम राज्य की आबादी दार्जिलिंग जिले जितनी ही है और 2007–08 के लिए उसका बजट 5221.11 करोड़ का था. वैसे 70 के दशक की शुरुआत में ही केंद्र ने देश के पर्वतीय क्षेत्रों के विकास के लिए एक कार्यक्रम की घोषणा की. केंद्र की पहल पर ही राज्य सरकार ने पर्वतीय विकास विभाग भी बनाया है. इसके अलावा उत्तर बंग विकास परिषद भी काम कर रही है, जिसके चेयरमैन ख़ुद मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य हैं. पहाड़ के नेताओं का कहना है कि सिलीगुड़ी–जलपाईगुड़ी विकास प्राधिकरण के गठन का मक़सद ही दार्जिलिंग जिले के पर्वतीय इलाक़ों के लिए आवंटित फंड को हड़पना था. प्राधिकरण की ओर से सिलीगुड़ी अनुमंडल में न्यू टाउनशिप, सैटेलाइट टाउनशिप, चौथे महानंदा पुल, फुड पार्क, ड्राई पोर्ट और टी पार्क जैसी बड़ी परियोजनाओं पर काम हो रहा है. सरकारी तौर पर बंगाली और ग़ैर–बंगाली वाली मानसिकता कितनी साफ है, इसकी एक मिसाल देखी जा सकती है. 1999 में कारगिल की लड़ाई में केवल दार्जिलिंग जिले के 25 गोरखा शहीद हुए. जब यह ख़बर आई कि संग्राम घोष नामक एक जवान भी शहीद हुआ है तो उसके लिए 11 जुलाई 1999 को विधानसभा में एक शोक प्रस्ताव लाया गया. हालांकि बाद में संग्राम घोष को जीवित बताया गया. शोक प्रस्ताव में सिर्फ़ एक बंगाली को शहीद के तौर पर याद किया गया, गोरखा शहीदों का नाम भी नहीं लिया गया.

अभी पहाड़ पर बेमियादी बंद चल रहा है. केंद्र ने 12 अगस्त को त्रिपक्षीय बैठक बुलाई है, पर गोरखा नेता बैठक का एजेंडा घोषित करने और बैठक जुलाई में ही बुलाने की मांग कर रहे हैं. 13 जुलाई को नेताओं ने पहाड़ के सभी स्कूलों को बंद करने का फ़रमान सुनाया. पर्यटकों को भी लौटने को कह दिया गया. इस आंदोलन से क्या पहाड़ की अर्थव्यस्था नहीं बिगड़ेगी, यह पूछने पर गोजमुमो महासचिव रोशन गिरी ने बताया कि यह देखते हुए ही 19 जुलाई से स्कूलों को छूट दे दी गई है और सिक्किम जाने वाले राजमार्ग 41 ए को भी बंद से मुक्त रखा गया है. कहने की बात नहीं कि विमल गुरुंग के आंदोलन से सिक्किम को भी नुक़सान उठाना पड़ रहा है. पिछले साल दनादन किए गए कई बेमियादी बंदों से उकताकर मुख्यमंत्री पवन कुमार चामलिंग को केंद्र से गुहार लगानी पड़ी थी. हालांकि वहां की एक बड़ी आबादी गोरखालैंड की मांग का समर्थन कर रही है. यही वजह है कि विधानसभा चुनावों से पहले सिक्किम विधानसभा में गोरखालैंड के समर्थन में प्रस्ताव पारित किया गया. दिल्ली यात्राओं के दौरान भी डॉ. चामलिंग ने कई बार गोरखालैंड के पक्ष में बयान दिए.

2011 में बंगाल में विधानसभा चुनाव होने वाले हैं और विमल गुरुंग ने 2010 तक गोरखालैंड हासिल करने की कसम खाई है. अभी पिछले लोकसभा चुनाव में ही बंगाल के एक और विभाजन की साजिश को माकपा ने एक चुनावी मुद्दा बनाया और इसका इस्तेमाल भाजपा के ख़िलाफ़ किया. ऐसे में नहीं लगता कि सरकार गोरखालैंड पर कोई नरम रुख़ अपनाने वाली है. टकराव की आशंका साफ दिख रही है. देखना यह है कि 12 अगस्त की त्रिपक्षीय वार्ता का रुख़ क्या होता है. अफवाहों के मुताबिक क्या ऐसा होगा कि नए स्वायत्त निकाय में गोरखालैंड शब्द जोड़ देने से विमल गुरुंग मान जाएंगे? या फिर टकराव का लंबा सिलसिला जारी रहेगा?

feedback.chauthiduniya@gmail.com

बहुत पुरानी है यह मांग

विमल गुरुंग

गोरखालैंड समर्थकों का कहना है कि गोरखालैंड की मांग बंगाल के गठन से पहले से यानी 1907 से हो रही है, जबकि पश्चिम बंगाल राज्य का गठन 1947 में हुआ. यहां तक कि इतिहास में बंग प्रजाति के लोगों का निवास गंगा और वर्तमान में बांग्लादेश की पद्मा नहीं के दक्षिणी हिस्से को बताया जाता था. इस तरह सोनार बांग्ला का एक बड़ा हिस्सा ढाका, खुलना, बरीसाल में ही पड़ता था. यहां तक कि ब्रिटिश राज में बंगाल राज्य जैसा कुछ नहीं था, बल्कि इसे बंगाल प्रेसिडेंसी कहा जाता था. दार्जिलिंग का वर्तमान इलाक़ा सिक्किम और भूटान का हिस्सा रहा है. 1835 में सिक्किम के राजा से मिले भू-भाग और 1865 में भूटान नरेश से मिले हिस्से को प्रशासनिक सुविधा के लिए ब्रिटिश शासकों ने राजशाही डिवीजन के प्रशासनिक क्षेत्र में रखा. 1905 में बंगाल विभाजन के बाद इस इलाक़े को बिहार के भागलपुर डिवीजन में रखा गया. इस तरह दार्जिलिंग कभी बंगाल का हिस्सा रहा ही नहीं. 1928 में अखिल भारतीय गोरखा लीग का गठन हुआ, जिसने गोरखाओं के लिए अलग से प्रशासनिक व्यवस्था करने की मांग की गई थी. 1986 में तत्कालीन मुख्यमंत्री ज्योति बसु के हस्ताक्षर से जारी श्वेत पत्र में भी माना गया कि दार्जिलिंग जिला और तराई डुआर्स कभी सिक्किम व भूटान के हिस्से थे. सबसे पहले 1943 में स्व. डंबर सिंह गुरुंग ने 1943 में गोरखा लीग की स्थापना की और भारतीय गोरखाओं के लिए अलग राज्य की मांग की. बाद में रानू और गुलशन नंदा के स्तर से भी घटिया उपन्यासों के रचयिता सुभाष घीसिंग ने गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा बनाया और इस मुद्दे को हथियाकर गोरखालैंड का बिगुल फूंका. दो साल के ख़ूनी संघर्ष के बाद 25 जुलाई 1988 को नई दिल्ली में केंद्रीय गृहमंत्री, पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री और सुभाष घीसिंग के बीच त्रिपक्षीय बैठक हुई. 22 अगस्त 1988 को एक मेमोरेंडम आफ सेटलमेंट (दार्जिलिंग समझौता) हुआ. इसके तहत जीएनएलएफ ने अलग गोरखालैंड राज्य की मांग छोड़ दी और दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल एक्ट 1988 के तहत दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद का गठन हुआ. 2007 में जब बंगाल सरकार की सहमति से घीसिंग ने पर्वतीय परिषद को संविधान की छठीं अनुसूची में शामिल करने की मांग की तो तुरंत विमल गुरुंग ने बग़ावत की और गोरखाजन मुक्ति मोर्चे के नाम से अपना अलग संगठन बना लिया. 10 मार्च 2008 को पर्वतीय परिषद के कार्यवाहक प्रशासक पद से घीसिंग ने इस्तीफ़ा दे दिया और पश्चिम बंगाल सरकार को अपना प्रशासक नियुक्त करना पड़ा.

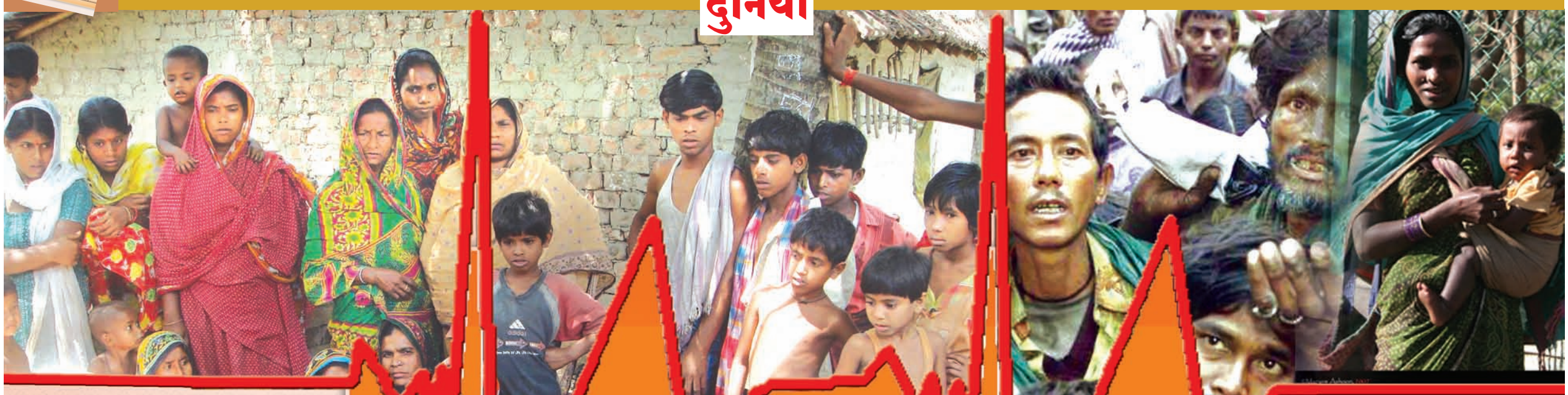

मानव विकास सूचकांक का शोर अधिक, दम कम

आंकने से पहले समझें राज्यों की अनेकता

मानव विकास कार्यक्रमों को सुचारू रूप से क्रियान्वित करने के लिए सरकार को प्रत्येक प्रदेश में मानव विकास की वास्तविक स्थिति का जायज़ा लेना ज़रूरी है. हमारे देश में सभी प्रदेशों को एक ही पायदान पर रख कर अगर आकलन किया जाता है तो कभी भी राष्ट्रीय स्तर पर सही तस्वीर सामने नहीं आएगी. इसके लिए ज़रूरी है कि सभी प्रदेशों में मानव विकास का अलग से आकलन किया जाए और फिर उसे राष्ट्रीय स्वरूप देने के लिए समग्रता से जोड़ा जाना चाहिए.

इसके लिए सबसे पहला सवाल उठता है कि क्या हमारे सामाजिक आंकड़े इस बात के लिए पर्याप्त हैं कि हम प्रदेश स्तर पर मानव विकास का आकलन कर सकेंगे ? हमें ज़्यादातर आंकड़े सेंसस, एनएसएसओ, एसआरएस और एनसीआरटी जैसी संस्थाओं से मिलते हैं, जिनकी विश्वसनीयता पर सवाल नहीं उठाए जा सकते हैं. लेकिन इन आंकड़ों के ज़रिए राज्य स्तर पर मानव विकास का आकलन करने में कई परेशानियां सामने आती हैं. जैसे,

1 आंकड़ों के सभी स्रोतों में एकरूपता की कमी है.
2 सभी स्रोतों केआंकड़ें अलग उद्देश्य से एकत्रित किए गए हैं.
3 सभी आंकड़ों को एकत्रित करने की समयावधि अलग-अलग है.

इन परेशानियों केचलते विकास कार्यों और नीतियों के क्रियान्वयन से प्रदेशों के विकास में पैदा हो रही विसंगतियों को समझने में दिक़्क़त होती है. राज्यों के बीच बढ़ते अंतर और उनके कारणों को समझने में परेशानी का सामना करना पड़ता है.

नेशनल काउंसिल ऑफ अप्लाइड इकॉनॉमिक रिसर्च (एनसीईआर) ने 1993-94 में योजना आयोग के निर्देश पर मानव विकास प्रोजेक्ट की शुरुआत की. इसमें यूनडीपी, यूनीसेफ और यूएनएफपीए से आर्थिक सहायता दी गई. इस परियोजना का मक़सद था कि देश के विभिन्न संस्थाओं में मौजूद आंकड़ों और द्वितीयक स्रोतों की मदद से भारत केप्रदेशों की मानव विकास स्थिति को रेखांकित किया जाए. एनसीईआर और एचडीआई द्वारा 1994 में कराए गए सैंपल सर्वे में उन 33,200 ग्रामीण परिवारों को लिया गया जो 1765 गांवों में बंटे हुए थे. इन गांवों का चयन पंद्रह प्रदेशों के 195 जिलों से किया गया था. इस सर्वेक्षण से एकत्रित किए गए आंकड़ों से लगभग 100 सूचक तैयार किए गए, जिनकी मदद से पूरे देश के विकास का आकलन किया गया. सवाल यह उठता है कि क्या इस तरह के सैंपल देश की वास्तविक छवि देने में सक्षम हैं.

मानव विकास सूचकांक निर्धारित करने के साथ-साथ इन आंकड़ों का प्रयोग कई मंत्रालय और योजना आयोग राष्ट्रीय और प्रदेश स्तर की नीतियों के निर्धारण में करते हैं. जिस तरह से यूएनडीपी देश की वास्तविक स्थिति को प्रस्तुत करने में विफल हो रही है, ठीक उसी तरह केंद्र और राज्य सरकारें भी अपनी नीतियों में विफल हो रही हैं. आज ज़रूरत इस बात की है कि प्रदेशों में विकास का सही आकलन करने के लिए राष्ट्रीय सैंपल लेने के बजाय प्रदेश स्तर पर ही सैंपल तय किए जाएं और राज्यवार विकास की स्थिति का जायज़ा लिया जाए.

मानव विकास सूचकांक का निर्माण करने में जो महत्वपूर्ण बिंदु ध्यान में रखे गए, वे थे-

1 सूचकांक मानव विकास के मूलभूत विचार कि हमारे पास विकास के लिए कितने विकल्प मौजूद हैं, को दर्शाएगा.
2 यह सूचकांक कम से कम परिवर्तनशील तत्वों का इस्तेमाल करेगा ताकि वह सरकारों और नीतिकारों को आसानी से समझ में आए.
3 इस सूचकांक को महज़ एक संख्या से दर्शाया जा सके और दो देशों की संख्या में तुलनात्मक अध्ययन आसान हो.
4 मानव विकास सूचकांक में दोनों सामाजिक और आर्थिक पहलुओं में हमारे लिए विकल्प को दर्शाने की क्षमता हो.
5 इस सूचकांक की गणना और उसका तरीक़ा काफी लचीला होना चाहिए, ताकि समय-समय पर इसमें आसानी से सुधार किया जा सके.
6 कोई भी सूचकांक उतना ही प्रभावी होता है जितने सही आंकड़े उसमें दिए गए होते हैं. इसलिए एचडीआई के निर्माण में यह भी कोशिश थी कि ग़लत या अधूरे डाटा के चलते सूचकांक निकालने के काम में कोई बाधा न आए.

ग़रीबी समाज के अंदर मौजूद एक ऐसी चीज़ है, जो हरेक समाज और समय के हिसाब से बदलती रहती है. खुद के ग़रीब या अमीर होने का आभास जीवन में भौतिक सुविधाओं और चीज़ों के होने या फिर उनके अभाव पर ही आधारित नहीं होता है. यह आभास आधिभौतिक (मेटाफिजिकल) स्तर पर होता है. आमतौर पर यह आभास उस सामाजिक अवस्था का है जिसमें आप रहते हैं और दूसरों से बातचीत करते हैं. नीतिकार और योजनाकार किसी दिए समय पर ग़रीबी मापने के लिए वस्तुनिष्ठ मानदंड का निर्माण करते हैं. उसी मानदंड के आंकड़ों पर समाज में पनप रही ग़रीबी का अंदाज़ा लगाते हैं. यह मानदंड आमतौर पर सामाजिक और आर्थिक दशा और उन लक्ष्यों पर आधारित होता है, जिन्हें समाज एक तयशुदा समय में पाना चाहता है.

आज विकसित देशों में ग़रीबी मापने के मानदंड विकासशील देशों से अलग हैं. हालांकि, एक बात पर दुनियाभर में आम सहमति है कि जीवन के लिए रोटी, कपड़ा और मकान वे मौलिक ज़रूरतें हैं, जो इंसान के लिए अहम हैं. समाज के जिस भी तबके के पास यह नहीं है, वह मानव विकास के नाम पर दाग़ है. मानव विकास का विचार बहुत ही जटिल और बहुआयामी है. इतना ज़रूर साफ है कि मानव विकास महज़ ग़रीबी दूर करना नहीं है. मानव विकास उस अवस्था को कहा जा सकता है, जहां कोई भी इंसान अपने लिए कोई लक्ष्य निर्धारित कर सके और उसे पाने के लिए ख़ुद को सक्षम बना सके. मानव विकास का मौजूदा स्वरूप संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यक्रम के तहत सुर्ख़ियों में आया. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के एक निर्माता महबूब-उल-हक़ के मुताबिक मानव विकास का प्रमुख उद्देश्य लोगों के लिए विकल्प की मात्रा को बढ़ाना है. हालांकि जब मानव विकास सूचकांक का खाका बन कर तैयार हुआ और साल-दर-साल इसके आंकड़ों से विकास को दर्शाया जाने लगा तो यह साफ हो गया कि यह सूचकांक भी अपने मूल आदर्शों को सही ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा है. दुनियाभर से नीतिकारों और बौद्धिकों को इस सूचकांक में कई ख़ामियां नज़र आईं. सबसे पहला सवाल यह उठा कि मानव विकास सूचकांक विकास की सही तस्वीर नहीं दे रहा है. दरअसल यह सूचकांक महज़ सामाजिक और आर्थिक पहलुओं तक सीमित है. राजनीतिक और प्रशासनिक पहलू इस सूचकांक के विषय नहीं हैं. यह सूचकांक उन दो देशों के बीच के अंतर को नहीं देखता और एक ही स्तर पर ग़रीब और अमीर देशों को रख कर तुलना करता है. कुछ विशेषज्ञ यह भी दावा करते हैं कि देशों के बीच अंतर के साथ-साथ यह जेंडर को भी एक समान रूप से देखता है और समाज में महिलाओं और पुरुषों के लिए एक जैसी स्थिति दिखाता है, जबकि वास्तविकता इससे काफी अलग है. दलील यह भी दी जाती है कि मानव विकास सूचकांक विचार के स्तर पर भी काफी कमज़ोर है और प्रभाविता के स्तर पर भी भ्रामक है. दरअसल सूचकांक के दोनों पहलू काफी कमज़ोर हैं. पहला, विकासशील देशों का सकल घरेलू उत्पाद अधूरा और ग़लतियों से भरा होता है. इसके साथ ही अमेरिकी डॉलर को आधार बनाकर किसी देश की ख़रीद क्षमता को आंकना ज़ाहिर तौर पर कभी भी सही नतीजा नहीं दे सकती. इसके साथ ही 117 में से 87 देशों के पास जीवन प्रत्याशा (लाइफ एक्सपेक्टेंसी) का कोई भी आंकड़ा उपलब्ध नहीं है. वहीं साक्षरता के भी आंकड़े अधिकतर देशों ने 1970 के बाद से एकत्र नहीं किए हैं. मानव विकास सूचकांक को तकनीकी रूप से भी विफल पाया जा रहा है. शिक्षाविदों का मानना है कि मानव विकास सूचकांक पुराने सूचकांक में बहुत हल्के सुधार कर के बनाए गए हैं. लिहाज़ा, इसके आंकड़े पुराने सूचकांकों के आंकड़ों से ज़्यादा अलग नहीं हैं. ये आंकड़े अपनी ख़ामियों के चलते दो अलग देशों में विकास के पैमाने की तुलना करने में पूरी तरह से विफल हैं. भारत को आज़ाद हुए आधी से भी ज़्यादा सदी गुज़र चुकी है, लेकिन वह फिर भी एक ग़रीब देश ही गिना जाता है. प्रति व्यक्ति आय का मामला हो या मानव विकास सूचकांक का, हर सूची में इसकी जगह निचले पायदान पर ही रहती है. भारतीय अर्थतंत्र की वृद्धि दर चीन तो छोड़िए, एशिया के कुछ अन्य देशों की तुलना में भी आधी से कम रही है. और हमारी सरकारें, चाहे केंद्र की हो या फिर राज्यों की, दिवालिएपन के कगार पर खड़ी हैं. मानव या सामाजिक विकास के अन्य सूचकांकों के संदर्भ में भी वह काफी नीचे है. इसकी क़रीब आधी आबादी निरक्षर है और इतने ही लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता. आज़ादी के पचास साल बाद देखें तो ग़रीबी के अनुपात तथा मानव विकास के अन्य सूचकांकों में कुछ सुधार तो हुआ है. इसके बावजूद भारत अभी भी ग़रीबी के दलदल में फंसा हुआ है. आर्थिक दृष्टि से हमारे इस आश्चर्यजनक पिछड़ेपन की वजह उन नीतियों के जारी रहने में है जिनका कुछ औचित्य भले ही औपनिवेशिक अतीत के मद्देनज़र शुरू हो रहा हो, लेकिन जो अपनी सारी उपयोगिता काफी पहले खो चुकी हैं. इन नीतियों के सूत्रबद्ध किए जाने के बाद से लेकर अब तक विश्व का आर्थिक परिदृश्य काफी बदल चुका है और आज हमारे सामने इसके अलावा और कोई चारा नहीं है कि हम सोच-समझ कर नई हक़ीक़तों का सामना करें. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट ने फिर से एक बात साफ कर दी है कि भारत की आर्थिक तरक़्क़ी का मतलब सभी भारतीयों के लिए बेहतर ज़िंदगी नहीं है. जीवन प्रत्याशा, शिक्षा, साक्षरता और जीवन स्तर जैसे विकास के कई संकेतकों पर आधारित इस रिपोर्ट के मुताबिक भारत 128वें स्थान पर है. साल 2000 में भी हम इसी स्थान पर थे. सात सालों में मुल्क ने काफी तरक़्क़ी तो की है, लेकिन मानव विकास के सूचकांक में हम एक सीढ़ी भी ऊपर नहीं चढ़ सके हैं. दरअसल, हम सबसे निचले पायदान के काफी क़रीब हैं. रिपोर्ट इसी बात की पुष्टि करती है जो हम पहले से जानते हैं-भारत और इंडिया के बीच की खाई बहुत चौड़ी है. इसके अलावा एक बात जो सबसे अहम है, वह यह है कि मानव विकास सूचकांक का निर्धारण किस तरह से किया जा रहा है. नब्बे के दशक में स्कैंडिनेवियन देशों की समीक्षा से शुरू किए गए इस सूचकांक की सबसे बड़ी ख़ामी यही है कि वह यूरोपीय देशों की तुलना में विश्वभर के देशों का आकलन करता है.

देश	रैंकिंग 2008 (2006)	रैंकिंग 2007/08(2005)
आइसलैंड	1 (0.968)	1 (0.968)
नार्वे	2 (0.968)	2 (0.968)
आस्ट्रेलिया	4 (0.965)	3 (0.962)
अमेरिका	15 (0.950)	12 (0.951)
रूस	73 (0.806)	67 (0.802)
चीन	94 (0.762)	81 (0.777)
श्रीलंका	104 (0.742)	99 (0.743)
भारत	132 (0.609)	128 (0.619)
पाकिस्तान	139 (0.562)	136 (0.567)
बांग्लादेश	147 (0.524)	140(0.547)

क्या है मानव विकास सूचकांक

मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) एक सूचकांक है, जिसका प्रयोग देशों को मानव विकास केआधार पर आंकने के लिए किया जाता है. इस सूचकांक से इस बात का पता चलता है कि कोई देश विकसित है, विकासशील है, अथवा अविकसित है. इसके आकलन के लिए तीन मूल आयाम है-पहला, लंबा और स्वस्थ जीवन जिसे जन्म के वक़्त जीवन प्रत्याशा के आधार पर जोड़ा जाता है. दूसरा है ज्ञान, जिसका आधार वयस्क शिक्षा है और प्राइमरी, सेकेंडरी और कॉलेज में पढ़ने वाली जनसंख्या का संयोग है. तीसरा आयाम है जीवन का सहज स्तर, जिसकी गणना सकल घरेलू उत्पाद में प्रति व्यक्ति ख़रीद की क्षमता पर की जाती है.

एचडीआई का मक़सद

मानव विकास सूचकांक निकालने का मक़सद है कि देश के नीतिकार, योजनाकार, मीडिया और ग़ैर-सरकारी संस्थानों का ध्यान मानव विकास के वास्तविक पहलुओं की तरफ़ खींचा जा सके. इसके ज़रिए किसी देश के आर्थिक विकास के बजाय मानव केंद्रित विकास को दर्शाया जा सके. इस सूचकांक के ज़रिए यह बताने की कोशिश है कि समान प्रति व्यक्ति आय वाले देशों में किस तरह नीतियों के चलते मानव विकास के आयाम बदल सकते हैं. उदाहरण के तौर पर पाकिस्तान और वियतनाम का प्रति व्यक्ति आय लगभग बराबर है, लेकिन साक्षरता और जीवन प्रत्याशा के चलते मानव विकास सूचकांक में वियतनाम को पाकिस्तान से ऊपर का स्थान मिला है. इन नतीजों के चलते सरकारों में तुरंत यह मुद्दा बन जाता है कि किस तरह से देश की स्वास्थ्य और शिक्षा सेवाओं को बेहतर कर मानव विकास को एक सम्मानित स्तर तक ले जाने की कोशिश की जाए.

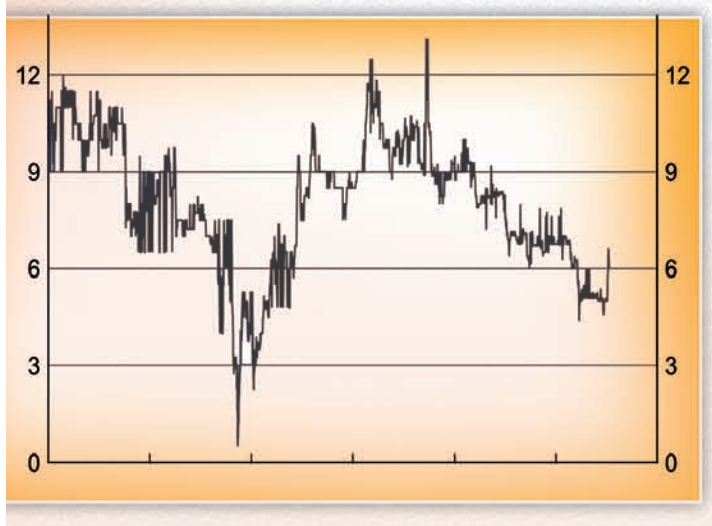

भारत को आज़ाद हुए आधी से भी ज़्यादा सदी गुज़र चुकी है, लेकिन वह फिर भी एक ग़रीब देश ही गिना जाता है. प्रति व्यक्ति आय का मामला हो या मानव विकास सूचकांक का, हर सूची में इसकी जगह निचले पायदान पर ही रहती है. भारतीय अर्थतंत्र की वृद्धि दर चीन तो छोड़िए, एशिया के कुछ अन्य देशों की तुलना में भी आधी से कम रही है.

लेखक

अमिताभ कुंडू : प्रोफेसर, सेंटर फॉर स्टडी ऑफ रीज़नल डेवेलपमेंट, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.

अबुसालेह शरीफ़ : सीनियर रिसर्चर, अंतरराष्ट्रीय खाद्य अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली.

पीके घोष : एसोसिएट फेलो एनसीईआर (नेशनल काउंसिल ऑफ अपलाईड इकोनॉमिक रिसर्च)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सुपरपावर बनने के लिए भारत में नहीं है दस का दम

यह सुनना बहुत अच्छा लगता है कि आने वाला समय भारत का होगा. या फिर वैश्विक मंच पर भारत महाशक्ति के तौर पर उभरेगा, आदि-आदि. भारत के भविष्य को लेकर हम सब में दुनिया में सबसे आगे रहने की उम्मीद और आशाएं हैं. जिस तरह से इंडिया इंक की ताक़त और हैसियत पिछले वर्षों में बढ़ी है, उसके मद्देनज़र यह आशा बेमानी भी नहीं लगती. लेकिन क्या सच में भारत में वे बातें हैं जो किसी सुपरपावर में होनी चाहिए ? दरअसल 21वीं सदी के भारत में भी कई ऐसी समस्याएं हैं, जो भारत की सुपरपावर बनने की राह में रोड़ा हैं. जब तक अपना ही घर मज़बूत न हो, तब तक दुनिया भर में अग्रणी बनने का विचार तो ख़याली पुलाव ही रहेगा. सुपरपावर बनने के लिए देश को कुछ रोगों से जल्द से जल्द छुटकारा पाना होगा. आइए नज़र डालते हैं, ऐसी दस बातों पर जिनके रहते भारत नहीं बन सकता महाशक्ति.

1 **धार्मिक अतिवाद :** वसुधैव कुटुंबकम्, भारत की विविधता का हवाला देने वाले इस मंत्र को भले जपते रहें लेकिन सच्चाई तो यही है कि भारत के सभी धर्मों में उदारवादी और समझदार लोग पीछे धकेल दिए गए हैं. अतिवादियों का बोलबाला हो गया है.

2 **वामपंथी अतिवाद :** प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह और गृहमंत्री चिदंबरम भी मान रहे हैं कि नक्सलवाद हमारी सबसे बड़ी समस्या है. भौगोलिक कारणों और राजनीतिक व सामाजिक समीकरणों की वजह से पनपा यह उग्रवाद दरअसल भारत में आदिवासियों को लंबे समय से ज़मीन से बेदखल और सुविधाओं से वंचित रखने का नतीजा है.

3 **भ्रष्टाचार :** भारत में राजनीतिक पार्टियां किसी बपौती दुकान की तरह चलती हैं. न तो उनमें कोई जवाबदेही है और न ही कोई पारदर्शिता. इससे भारत की सत्ता के केंद्र में ही भ्रष्टाचार के बीज मौजूद हैं. जहां तक दुनिया के सबसे भ्रष्ट देशों की बात है, तो भारत 72वें पायदान पर है. भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ आरटीआई तो एक धारदार हथियार बना है, लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाक़ी है.

4 **सार्वजनिक संस्थाओं में गिरावट :** भारत में कोई ऐसा संस्थान नहीं है, जो ख़ुद को ज़ंग लगने से बचा पाया हो. विश्वविद्यालयों, पुलिस, सिविल सेवा, और निचले स्तर की न्यायपालिका, सभी के स्तर में गिरावट आई है.

5 **अमीर-ग़रीब विभाजन :** एक तरफ़ जहां कई भारतीयों के नाम दुनिया के सबसे अमीरों में हैं, वहीं दूसरी ओर किसान आत्महत्या कर रहे हैं. पिछले 10-15 सालों से भारत में अच्छा जीवन जीने का विचार पैदा हुआ है. इस कोशिश में भारत शहरी और गांव में और अधिक बंट गया है, जिसने इस अमीरी-ग़रीबी की खाई को बढ़ाया ही है.

6 **पर्यावरण की बिगड़ती सेहत :** भू-जल के तेज़ी से घटने, मिट्टी और पानी का कैमिकल प्रदूषण, नदियों के सूखने और कई प्रजातियों के ग़ायब हो जाने जैसी वजहों से बिगड़ते पर्यावरण ने अब लोगों को सीधे तौर पर प्रभावित करना शुरू कर दिया है. सफाई के नाम पर गंगा और यमुना जैसी नदियां लगातार और अधिक मैली होती जा रही हैं. वन क्षेत्र सिकुड़ रहे हैं सो अलग. बाढ़ और सूखे की समस्या साल दर साल बढ़ती ही जा रही है.

7 **मीडिया :** जब पूरा भारत पस्त है, मीडिया बेसिरपैर की चीज़ें दिखाने में मस्त है. ज़मीन से जुड़े मुद्दों, जैसे असमानता और पर्यावरण, की कोई रिपोर्टिंग नज़र नहीं आती. नकारात्मकता का प्रचार अधिक किया जा रहा है.

8 **राजनीतिक अस्थिरता :** टुकड़ों में बंटी भारतीय राजनीति का मतलब है राज्यों और केंद्र में गठबंधन सरकारें. बनते-बिगड़ते इस तरह के मौकापरस्त गठबंधनों से राजनीतिक अस्थिरता आए दिन की बात हो गई है. इससे जहां केंद्र-राज्य संबंध बिगड़ते हैं, वहीं न तो कोई दीर्घकालिक नीति बन पाती है और न ही उन पर अमल ही हो पाता है.

9 **सीमा विवाद :** भारत के कुछ हिस्सों में अभी भी सीमा का विवाद है. इससे ज़ाहिर होता है कि कुछ भागों ने अभी भी भारतीयता को स्वीकार नहीं किया है. पूर्वोत्तर के राज्य और जम्मू-कश्मीर इसके उदाहरण हैं. यह शिकायत आम है कि बाक़ी भारत भी पूर्वोत्तर के साथ अपने जैसा पेश नहीं आता. इसके अलावा नए सिरे से उठ रहे भाषायी विवाद आग में घी का काम कर रहे हैं. स्थानीय बनाम परप्रदेशी का मुद्दा देश को मज़बूत नहीं बनने देगा.

10 **पड़ोसी :** जब पड़ोस में आग लगती है तो लपटें अपने घर तक आती ही हैं. भारत के पड़ोसी देशों में लंबे समय से अस्थिरता रही है, ऐसे में उसका असर तो झेलना ही पड़ेगा. पड़ोसियों से शांति और सौहार्दपूर्ण संबंध जितने रहेंगे, उतने ही अपने विकास पर ध्यान केंद्रित करना आसान रहेगा. चीन और पाकिस्तान तो स्थायी सिरदर्द हैं ही, नेपाल में भी हालात बदल रहे हैं.

ग्राफिक- *अनवारूल हक*

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मंदी से मुक्ति का रास्ता

सौमित्र मोहन

पूर्वी एशिया में 1990 में आई मंदी की समस्या अतिवादी पूंजीवाद, घटिया वित्तीय व्यवस्था और बेहिचक पूंजीवादी गतिविधि से हुई थी, जो पूंजी की पूर्ण परिवर्तनीयता और कमज़ोर वित्तीय व्यवस्था की देन थी. यह तो वित्तीय संकट की महज़ शुरुआत थी. यह अलग बात है कि हमने इससे कोई सबक़ नहीं सीखा. जब आप इतिहास से नहीं सीखते, तो वह ख़ुद को दोहराता है. जैसा कि हम अभी देख रहे हैं.

एक समय था, जब नव-शास्त्रीय उदारवादियों ने 1980 के दशक में साम्यवाद के पतन पर जश्न मनाया था. इसे हम उस समय के कई आर्थिक चिंतकों के बयानों में देख सकते हैं. इसमें उदारवादी पूंजीवाद के बड़े प्रवर्तक फ्रांसिस फूकोयामा भी शामिल थे. फूकोयामा ने तो यहां तक घोषणा कर दी कि आयरन कर्टेन (लोहे की दीवार) कही जाने वाली साम्यवादी व्यवस्था के पतन के साथ ही इतिहास का अंत हो गया है और उदारवादी पूंजीवाद की अंतिम तौर पर जीत हो गई है. यह बात दीगर है कि इस तरह के तमाम दावे ग़लत साबित हुए, क्योंकि हाल की घटनाओं में पूंजीवाद का नकाब भी उतर चुका है.

दुनिया की अर्थव्यवस्था में आई मंदी और उससे हुए औद्योगिक और वित्तीय घाटों के मद्देनज़र पूंजीवाद के प्रभावी होने और उसके पारदर्शी होने के दावे ध्वस्त हो गए हैं. अब हम यह जानते हैं कि दुनिया को प्रभावित करने वाले हरेक मसले का जवाब पूंजीवाद और मुक्त अर्थव्यवस्था में नहीं है. अगर ऐसा होता, तो हम वर्तमान की दयनीय दशा नहीं झेल रहे होते. हम अब यह जानते हैं कि उदारवादी पूंजीवाद कोई अद्‌भुत वस्तु नहीं, और न ही हम इसे पूरी तरह नियंत्रण से मुक्त रख सकते हैं, जैसा कि इसके समर्थक बताते हैं.

बेरोकटोक पूंजीवाद कोई ज़रूरी बुराई नहीं है और इसे सार्वजनिक तौर पर नियमित करने की ज़रूरत समय-समय पर पड़ेगी ही. आख़िरकार, कई सारे लोग और तत्व-जो केवल लाभ के लिए ही सोचते हों-किसी अराजक विश्वव्यवस्था में कैसे काम कर सकते हैं, जहां सार्वजनिक हितों की अनदेखी की जा रही हो? कुछ अमेरिकी कॉरपोरेट ने अपने असंतुलित व्यवहार से सामान्य शेयरधारकों की बलि चढ़ाकर अपने घर भर लिए. इसकी निंदा विश्व के बड़े नेताओं ने की, जिसमें बराक ओबामा भी शामिल थे. भारत में हम लोग हालांकि ख़ुद को भुलावा दे रहे हैं कि हमारा बड़ा उपभोक्ता आधार और बाहरी व्यापार पर कम निर्भरता हमारी अर्थव्यवस्था को मंदी या स्थिरता के नकारात्मक प्रभावों से बचा ले जाएगी. हालांकि, इसमें कई विश्लेषक ग़लत साबित हुए हैं. यही हाल उत्पादन में कमी और मुहैया रोज़गार की अवसरों में कमी का भी है. इन सबका प्रभाव हमारी इकॉनॉमी पर पड़ा है और विकास दर में कमी आई है.

हालांकि इन सब के बीच राहत की बात यह रही कि ब्रिक (ब्राज़ील, रूस, भारत और चीन) देशों में विकास की दर ठीक-ठाक बनी रही. इससे विश्व अर्थव्यवस्था पूरी तरह से ध्वस्त होने से बची रही. अगर हाल में आए सरकारी आर्थिक सर्वे की मानें तो इस वित्तीय वर्ष में आर्थिक विकास की दर फिर से तेज़ हो सकती है. इसके 7 से 7.75 फ़ीसदी के बीच में रहने की उम्मीद है, जो कि काफी स्वस्थ मानी जा सकती है. साथ ही, विश्व की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं द्वारा दी गई स्टिमलस पैकेज और मदद ने भी बाज़ार में मांग बढ़ाकर उसके रुख़ को बदला है.

वैसे अभी भी कुछ लोग हैं जो यह मानते हैं कि हमारी बचत का इस्तेमाल ख़र्च बढ़ाकर घरेलू अर्थव्यवस्था को उबारने में किया जाए. हालांकि हम ऐसा करें, उससे पहले एक बात पर विचार कर लें कि बाज़ार में जो पैसा पहले से ही है उसे भी कोई नहीं इस्तेमाल कर रहा. यह आश्चर्य की बात है कि कम ब्याज दर के बावजूद वित्तीय संस्थानों से क़र्ज़ लेने वालों की संख्या बहुत कम रही है. यह रुख़ पूरी दुनिया में देखा जा रहा है. दरअसल, बैंक और अन्य वित्तीय संस्थान भी क़र्ज़ देने के मामले में हिचकते रहे हैं.

हम अपने पुराने और परंपरागत बैंकिंग सिस्टम को दुरुस्त कर सकते हैं, लेकिन इसी सिस्टम ने हमें मंदी की उस मार से बचाया है जो पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं को अंधाधुंध क़र्ज़ देने की वजह से झेलनी पड़ी. ये पश्चिमी बैंक वैसल के बैंकिंग नियमों पर चलते रहे हैं. इसके अलावा पूंजी उपलब्धता और पूर्ण विदेशी निवेश के मामलों में हमारा सावधानी भरा रवैया उन कारणों में से है, जिसने हमें मंदी की ज़ोरदार मार से बचाया है. स्टॉक मार्केट में आया हालिया उछाल, उपभोक्ता वस्तुओं और रीयल इस्टेट के क्षेत्र में आई मांग में तेज़ी और अन्य क्षेत्रों में आए सुधार सकारात्मक संकेत हैं. यह सब सरकार की सहयोगी नीतियों, उदारवादी वित्त पैकेज, छठे वेतन आयोग की सिफ़ारिशों और किसानों की क़र्ज़ माफ़ी के बाद हुआ है. हालांकि, एक अनोखा विचार यह भी है कि भारत की तथाकथित अंडरग्राउंड या समांतर अर्थव्यवस्था ने उसे मंदी की बुरे असर से बचाया है. इस विचार को मानने वालों के हिसाब से इस अंडरग्राउंड अर्थव्यवस्था का पैसा मांग को घटने नहीं दे रहा और इस तरह एक ठीक-ठाक विकास दर बनाए रखने में मदद कर रहा है. महंगाई और पेट्रोलियम के घटे हुए दामों के बीच इस विकास दर ने मंदी की मार झेल रहे आम आदमी को सकारात्मक सोचने की ताक़त दी है. मौजूदा संकट से कमज़ोर आर्थिक खिलाड़ियों को बाहर करने में मदद मिलेगी या कम-से-कम ख़ुद में सुधार करने की अंदरूनी व्यवस्था को जन्म देगी. सत्यम, एआईजी और फोर्ड मोटर्स जैसों को बचे रहने के लिए इस मंदी से बड़े सबक़ लेने होंगे.

यह भी मांग उठी है कि कर में छूट देने वाले उपायों, जैसे विशेष आर्थिक क्षेत्र (एस ई ज़ेड) को ख़त्म किया जाए, क्योंकि बढ़ते राजकोषीय घाटे की वजह से सरकार को कमाई के नए स्रोत चाहिए. हालांकि वर्तमान स्थिति में ऐसा करना सही है या नहीं, इस पर गंभीर विचार करने की ज़रूरत है.

यह मांग भी उठी है कि डॉलर को स्पेशल ड्रॉइंग राइट्स (एसडीआर) या किसी अन्य मुद्रा से बदला जाए. चीन ने भी ऐसी मांग की थी, लेकिन इसे अमल में लाना बहुत कठिन है. हम पहले ही एक दुष्चक्र में फंस चुके हैं. डॉलर का मज़बूत होना हमारे हित में है. कमज़ोर डॉलर का मतलब होगा- अमेरिकी अर्थव्यवस्था में और गिरावट. इससे कई दूसरी अर्थव्यवस्थाएं जुड़ी हैं और उन्हें भी नुक़सान उठाना पड़ सकता है. यह तो जगज़ाहिर है कि चीन और भारत जैसे देशों में बड़ी मात्रा में की गई घरेलू बचत ने ही अंधाधुंध अमेरिकी खपत से संतुलन बनाए रखा. इस अंधाधुंध खपत से ही वह कुख्यात सब-प्राइम संकट उपजा, जिसने इस मंदी को जन्म दिया. यह संकट और बढ़ेगा, अगर सभी क़र्ज़दार अमेरिका से अपना विदेशी निवेश वापस ले लें. यह डॉलर को और कमज़ोर करेगा और इससे सभी को नुक़सान पहुंचेगा. कहा जा रहा है कि एक कमज़ोर अमेरिकी अर्थव्यवस्था सभी के लिए नुक़सानदेह है और इससे आर्थिक पुनरुत्थान की उम्मीद को ही ख़त्म या धीमा कर ही देगा. तथाकथित वाशिंगटन कंसेंसस के कमज़ोर पड़ने से दुनिया में नया नेतृत्व उभर रहा है, जिसमें अमेरिका अब शायद अकेली ताक़त न रहे. ब्रिक देश विश्व अर्थव्यवस्था के केंद्र पर क़ाबिज़ हो सकती हैं, जिसकी भविष्यवाणी हेनरी किसिंगर, केनिडी ओहमै, किशोर महबूबानी, केनेथ वाल्ट्ज और अन्य बहुत पहले से ही करते रहे हैं. इस दौरान किसी कुशल कलाबाज़ की तरह उदारवादी पूंजीवाद के अल्पवाद और सामाजिक कल्याणवाद के बहुवाद के बीच संतुलन क़ायम करना होगा.

(लेखक प. बंगाल में आईएएस अधिकारी हैं. आलेख में व्यक्त विचार उनके अपने हैं और इनका सरकार के विचारों से संबंध नहीं है.)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

भारत : एक नज़र में

फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

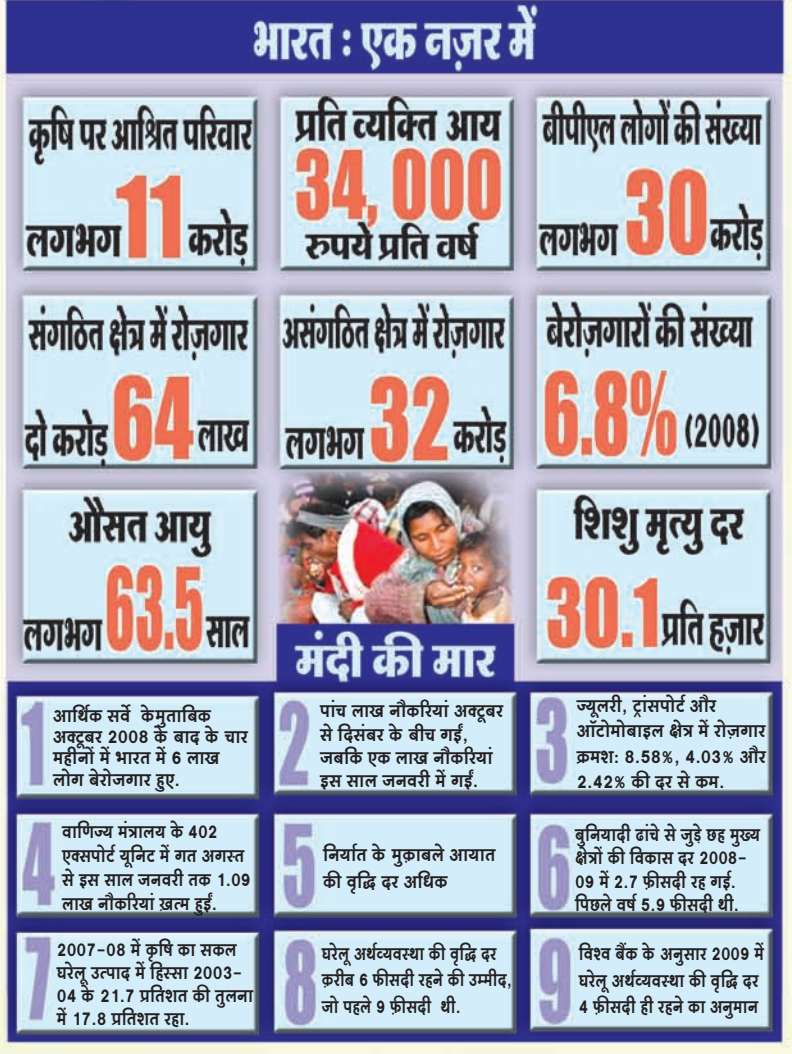

दुनिया

झूठ का सामना

गंगेश मिश्र

क्या आप धोखा देने, बलात्कार और ब्लैकमेल करने, जालसाजी करने, वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने, बच्चों के दिमाग़ को भ्रष्ट करने या हर वह काम करने वाले हैं, जो परिवार को शर्मसार करता है? अगर आपका जवाब हां में है तो, आप एक आदर्श पिता या पति भले न बन पाएं, करोड़पति ज़रूर बन सकते हैं. पश्चिम की तर्ज़ पर भारत में भी रियलिटी शो अब ऐसे लोगों को ही नायक बनाने लगे हैं. इसमें सबसे नया नाम शामिल हुआ है–सच का सामना. इसमें जो जितना नंगा हो सकता है, वह उतना कमा सकता है. भले इस चक्कर में उसका परिवार, रिश्तेदारी या दोस्ती ही क्यों न टूट जाए. यह *सच का सामना* कई कारणों से सबके लिए जितना डरावना है, उससे अधिक खुला चैलेंज है. सबसे पहले तो उस इंसान के लिए, जिसके सही या ग़लत होने का फ़ैसला एक मशीन–पॉलीग्राफ–करती है. फिर उस क़ानून के लिए जिसके द्वारा पूछताछ के सिलसिले में ग़लत ठहराए गए तौर–तरीक़ों को यह जायज़ ठहराता है. और, इन सबसे बढ़कर उस सरकार के लिए जो मनोरंजन के नाम पर लोगों की निजी ज़िंदगी को तार–तार करने की इजाज़त देती है. *स्टार प्लस* पर शुरू हुआ *सच का सामना* अन्य रियलिटी शो की तरह ही विदेशी प्रोग्राम की नक़ल है. यह पश्चिमी देशों में चर्चित रहे *मोमेंट ऑफ ट्रूथ* की सीधी नक़ल है. सेट से लेकर प्रस्तुत करने के अंदाज़ तक में उसकी नक़ल की गई है. बहरहाल, इसके पहले ही एपीसोड में भाग लेने वाली एक गृहिणी इसलिए हार गई कि उसने उस सवाल का जवाब नहीं में दिया था, जो अवैध संबंध बनाने की इच्छा पर आधारित था. उससे पूछा गया कि कभी यह इच्छा हुई थी कि पति को पता न चले तो अवैध संबंध बनाया जा सकता है? यह सवाल हर तरफ़ से एक स्त्री को घेर कर हरा देने वाला था. अगर वह *हां* कहती तो पति, परिवार, मोहल्ले–गांव के समाज की नज़रों से जाती. उसने काफी सोच कर जवाब दिया–नहीं. इस जवाब ने भी उसके सामने वैसे ही हालात पैदा किए जो पहले वाले जवाब से संभव था. झूठ पकड़ने वाली मशीन ने उस स्त्री को झूठा ठहरा दिया. पति ने सिर पकड़ लिया और शर्मसार हुई स्त्री के लिए सफाई का सिलसिला शुरू हो गया.

दूसरे एपीसोड में हिंदी रंगमंच, टीवी और कुछ समानांतर फिल्मों के कलाकार यूसुफ हुसैन से पूछा गया–आपने कभी अपनी किसी रिश्तेदार से शारीरिक संबंध बनाए? उन्होंने कहा–हां. यह सुन सामने बैठी उनकी बेटी और अन्य रिश्तेदार झेंप गए. ज़रा सोचिए, दूर कहीं अपने टीवी सेट के सामने बैठी उस स्त्री पर क्या गुज़री होगी, जिसके साथ यूसुफ ने संबंध बनाए थे. ज़ाहिर है, वह संबंध ज़बरिया बनाए होंगे या फुसला कर, दोनों ही स्थितियों में इतने सालों बाद वह उसी संत्रास और पीड़ा से गुज़री होगी. यूसुफ के सच को सामने लाकर शो वाले अपने को शाबाशी दे सकते हैं, लेकिन उसके लिए क्या कहेंगे जिसे लेकर वर्षों पहले कोई कानाफूसी हुई होगी और अब उस पर सच की मुहर लग गई होगी. जबकि हमारे यहां की संस्कृति कहती है–अगर सच अधिक अप्रिय हो तो न बोलना ही उचित है.

दरअसल यह सीधे–सीधे मानसिक और यौन शोषण है, जो रियलिटी शो के नाम पर किया जा रहा है. लोग कन्फेशन करते रहे हैं, लेकिन अकेले में. वह भी प्रायश्चित की भावना से. चोरी और सीनाज़ोरी वाले अंदाज़ में नहीं, जैसा कि यह रियलिटी शो कर रहा है. पति–पत्नी जैसे पवित्र रिश्ते को सार्वजनिक बना कर मज़ा लूटने की प्रवृत्ति समाज के लिए घातक है. अगर इस रिश्ते को कुछ अनदेखे–अनजाने पहलुओं के ज़रिए पतित बनाया जाना जारी रहा, तो मां–बाप जल्दी ही ऐरे–ग़ैरे में तब्दील हो जाएंगे. यही इस शो को बनाने वालों का मक़सद भी लगता है. साज़िश देखिए कि एक प्रतिभागी से पूछा जाता है–क्या आपने कभी अपने पिता को पीटा है? यानी जो बच्चे घरों में अपने–अपने पिताओं से असहमत हैं या जिन पर आक्रोश में किसी पिता ने हाथ उठाया दिया है, वह इससे प्रेरणा लें. यक़ीन मानिए, यह शो अगर इसी तरह चलता रहा तो परिवार और समाज पर सास–बहू वाले सीरियलों से अधिक ख़राब असर पड़ना तय है. सास–बहू वाले सीरियलों से तलाक़ के मामले बढ़े हैं, तो सच का सामना जैसे रियलिटी शो से माता–पिता पर अनदेखी के अजीबोग़रीब आरोप लगा कर मामले दर्ज़ होने शुरू हो जाएंगे. एकल परिवार के चलन वाले दौर में कई तरह की कुंठाएं इसके लिए उत्प्रेरक का काम करेंगी, सो अलग. यह शो में भाग लेने वाले की गरिमा को ख़त्म करने का प्रपंच रचता है. ऐसा करना न सिर्फ़ उत्पीड़न है, बल्कि यह उसकी अपनी नैतिकता के ख़िलाफ़ भी है. इससे भी अधिक उसके परिवार की बेइज़्ज़ती होती है. शो के बाद ऐसे परिवारों के लिए समाज में आंख उठा कर चल पाना मुश्किल हो रहा है. यह ठीक है कि परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है. लेकिन उसकी दिशा सकारात्मक तो हो. बड़े बनने के फेर में छोटे पर्दे का एडल्ट इंटरटेनमेंट को हथियार बना लेना उचित नहीं कहा जा सकता. जैसे पढ़ना चाहिए, लेकिन अश्लील साहित्य को पढ़ने की इजाज़त नहीं दी जा सकती.

लेकिन यही है आज की रियलिटी शो की हक़ीक़त, जो रात ढलते ही एक साथ बैठे पूरे परिवार का रोज़ाना यौन शोषण करने लगता है. लेकिन न सरकार चेत रही है न संसद और न ही सर्वोच्च न्यायालय. आपको है चुनौती, ड्राइंग रूम में अपने नंगेपन के साथ खुल गए बेडरूम में बच्चों की भागीदारी रोक सकें तो रोक कर दिखाएं. जी हां. यही है सच, जिसका सामना करने के लिए तैयार रहिए. इसलिए कि अपराधियों के साथ आजमाए जाने वाले पूछताछ के तौर–तरीक़े (पॉलीग्राफ टेस्ट) अब आम लोगों के साथ बातचीत में भी लागू कर दिए गए हैं. यानी कल तक जिस परिवार को कई तरह के उतार–चढ़ावों से गुज़रते हुए सफलतापूर्वक चलाने पर आप गर्व महसूस कर रहे थे, उसके लिए अपराधबोध महसूस करें. जिस किसी ने भी अब तक जीवन और आशा को दो सबसे महत्वपूर्ण तथ्य माना था, वे सच का सामना करें. फिर मानें कि मृत्यु की कामना और निराशा में डूबने जैसी भावना पर नियंत्रण पाकर आज इस तुच्छ आम आदमी ने जो भी थोड़ी–बहुत सफलता हासिल कर ली है, वह तो अपराध है. इसलिए जघन्य अपराध करने वाले की तरह पॉलीग्राफ टेस्ट कराकर रियलिटी शो को हाज़िर–नाज़िर मानते हुए अपने किए की सज़ा पाने को तैयार है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

झूठ से बेहतर है कड़वा सच : राजीव खंडेलवाल

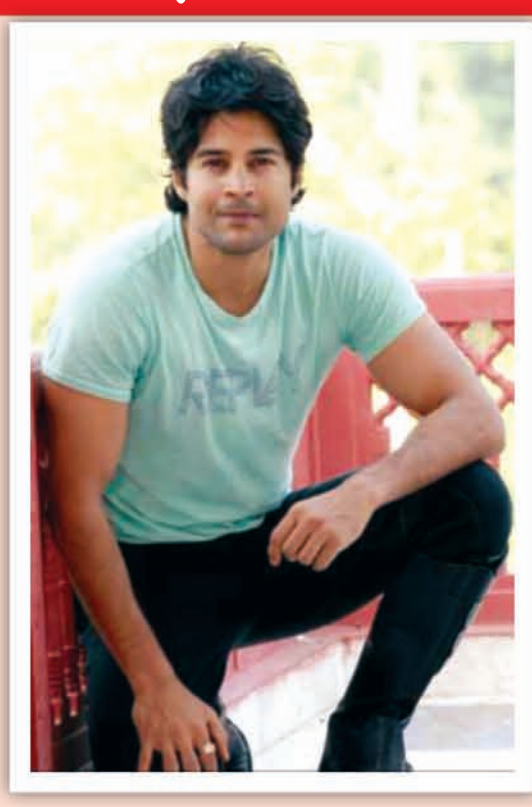

जब आप बॉलीवुड की फिल्में कर रहे हैं, तो फिर छोटे पर्दे पर क्यों?

वास्तव में, मैं शो *सच का सामना* होस्ट करने के लिए तैयार नहीं था, लेकिन बाबू (सिद्धार्थ बसु) ने मुझ पर द *मोमेंट ऑफ ट्रूथ* सीरीज देखने के लिए ज़ोर डाला और उसे देखते ही मैं फौरन मान गया. यह मुझे काफी दिलचस्प लगा. यह चुनौतीपूर्ण और उत्तेजक है.

सच का सामना में काफी निजी क़िस्म के सवाल पूछे जाते हैं. क्या आप सहज महसूस करते हैं?

मैं प्रतिभागियों से कह देता हूं कि मैं असहज हूं– जो सवाल मैं पूछूंगा उसी से मैं असहज महसूस करता हूं, इसलिए आप सोच लें कि जवाब देना कितना मुश्किल होगा. मैं उनसे सिर्फ़ मानवीय स्तर पर सवाल करता हूं. सच बोलना आसान नहीं होता है, इस तरह के सवाल पूछने के लिए मेरे पास कुछ तरीक़े हैं, यह किसी खेल की तरह है.

क्या आप यह नहीं सोचते कि वे सवाल परिवारों को तोड़ सकते हैं?

या फिर, परिवार को काफी नज़दीक ला सकते है. हमलोगों का सच के प्रति इस तरह का नकारात्मक रवैया क्यों है? यही अजीब है कि हम सभी कहते हैं–सच बोलना चाहिए, लेकिन जब इस तरह का शो हुआ है, तब यह कहा जा रहा है कि हम परिवारों को तोड़ रहे हैं! क्या किसी परिवार को झूठ पर जीवित रहना चाहिए? वह भी कितने समय तक इसको सहन करेगा? इसे दो तरीक़े से देखा जा सकता है. सच को छुपाना घातक हो सकता है. सच भले कड़वा हो लेकिन झूठ से बेहतर होता है.

राजीव, शो के प्रोमो में एक परिवार को छोड़कर जाते हुए देखा गया?

यह तस्वीर का एक पहलू है, जो इस एपिसोड में स्पष्ट होगा. आप नहीं जानते हैं कि उन्होंने शो क्यों छोड़ा. यह अग्निपरीक्षा है. हम अपने प्रतिभागियों का मज़ाक नहीं बना रहे हैं. हां, परिवार तोड़ने वाले शो मैं भी पसंद नहीं करता. इसलिए मैंने डेली सोप करना छोड़ दिया.

***सच का सामना* सचमुच में *मॉमेंट ऑफ द ट्रूथ* जैसा है?**

नहीं, हम ने इस शो में अपनी संस्कृति को अपनाया है. हम अब भी रुढ़िवादी समाज में जीते हैं. जहां चीज़ों के बारे में खुले तौर पर विचार–विमर्श नहीं होता. जब व्यक्ति बहुत अधिक भावुक हो जाता है, तब मैं उन से आसान सवाल पूछता हूं.

तब ड्रामा कहां है?

जब सच से पर्दा उठता है, तब थोड़ा बहुत ड्रामा होता ही है. यह ड्रामा न तो प्रतियोगियों में होता है और न ही मैं करता हूं. यह तभी होता है जब आप सवाल सुनते हैं और उससे अपने को जोड़ते हैं.

क्या आप ख़ुद ऐसे सवालों का जवाब देने का साहस करेंगे?

जब मैंने सवाल सुने, तब मैंने सोचा था कि लोग इन्हें अपने जीवन से जोड़कर देखेंगे.

पॉलीग्राफ : कितना सच, कितना झूठ

1 झूठ पकड़ने वाली मशीन यानी पॉलीग्राफ ऐसा यंत्र है जो सवालों के दौरान शारीरिक हलचलों जैसे ब्लड प्रेशर, नब्ज़, सांस की प्रक्रिया, शरीर के तापमान और त्वचा की हरकतों पर नज़र रखता है और उनको मापता है. यह मशीन इन्हें मापकर सच और झूठ का फ़ैसला करती है.

2 कई देशों में पॉलीग्राफ का प्रयोग अपराधियों से पूछताछ के लिए किया जाता है. कई देशों में ख़ास नौकरियों के लिए इंटरव्यू के दौरान भी इसकी मदद ली जाती है.

3 सबसे पहले 1885 में सीजर लोंब्रासो ने एक ऐसी मशीन का विकास किया जो पुलिस पूछताछ के दौरान ब्लड प्रेशर मापकर सच–झूठ का फ़ैसला करता था. पहली बार अमेरिका में बेकरली पुलिस ने इस पॉलीग्राफ को आधिकारिक रूप से अपनाया.

4 विलियम मार्सटन नाम के एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने ख़ुद को लाई डिटेक्टर (झूठ पकड़ने वाली मशीन) का आविष्कारक घोषित कर दिया. मार्सटन ज़िलेट के विज्ञापनों में आते थे और यह कहते थे कि शेव करनेवालों के लाई डिटेक्टर टेस्ट से यह साबित होता है कि ज़िलेट सबसे बढ़िया शेव बनाता है.

5 पॉलीग्राफ टेस्ट के दो तरीक़े हैं– कंप्यूटर के द्वारा या अन्य मशीनों के द्वारा. लोगों से पहले एक इंटरव्यू के द्वारा कुछ जानकारी ले ली जाती है, जिनका इस्तेमाल सवाल तय करने के लिए होता है.

6 टेस्ट भी कई तरह के होते हैं, कुछ टेस्टों में पहले कुछ ऐसे सवाल पूछे जाते हैं जिनका सवाल झूठ ही मिले, ऐसे सवालों के आधार पर तय शारीरिक हलचलों के आधार पर असल सवालों का जवाब परखा जाता है. इसे कंट्रोल्ड क्वेश्चन टेस्ट (सीक्यूटी) कहते हैं. इसके अलावा गिल्टी एडमिशन टेस्ट और कंसील्ड एडमिशन टेस्ट भी होते हैं.

7 1997 में हुए एक सर्वे के मुताबिक 421 वैज्ञानिकों के शोध में लाई–डिटेक्टर यानी पॉलीग्राफ की सत्यता 61 फ़ीसदी मापी गई.

8 अपनी शारीरिक हलचलों को नियंत्रित कर पॉलीग्राफ टेस्ट को धोखा दिया जा सकता है.

9 अमेरिका में पॉलीग्राफ का इस्तेमाल सबूत के तौर पर करने को लेकर ख़ासा विवाद है. कई राज्यों में इसे कोर्ट में माना जाता है, लेकिन आम तौर पर इसे भरोसेमंद नहीं माना जाता है. यूरोप, कनाडा और आस्ट्रेलिया में इसे पूछताछ के हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है लेकिन कोर्ट में नहीं माना जा सकता.

10 भारत में भी इसे सबूत के तौर पर नहीं माना जा सकता, लेकिन हाल के दिनों में इसका इस्तेमाल बड़े गुनाहों की जांच में हुआ है. एक मामले में कोर्ट ने मस्तिष्क की इलेक्ट्रॉनिक तरंगों की माप से आए नतीजे को फ़ैसले का आधार बनाते हुए एक महिला को उसके मंगेतर की हत्या की सज़ा दी.

तरह-तरह के रियलिटी शो

कहते हैं कि सच कल्पना से ज़्यादा अजीब होता है, शायद इसी विचार ने रियलिटी टीवी को जन्म दिया है. बेहतरीन कहानियों और नए प्लॉट्स की खोज के बजाय अब टीवी पर सच्चाई दिखाने का फैशन चल पड़ा है. हां, इस सच्चाई में इतना उलटफेर है, इतने पेंच हैं कि यह किसी भी रोमांचक कहानी को पीछे छोड़ दे. विदेशों में तो रियलिटी टीवी पहले से ज़िंदाबाद था, अब भारत में भी इसका नशा सर चढ़ कर बोल रहा है. अभी भारत के चार घरों में तैयारियां हो रही हैं क्योंकि उनकी बहू घर आने वाली है. हां, यह बहू कोई नई–नवेली शरमाती दुल्हन नहीं हैं, बोल्ड एंड ब्यूटीफुल राखी सावंत हैं जो एक रियलिटी शो में अपना दूल्हा तलाश रही हैं. कई नन्हें बच्चे अपने घर पर रियाज़ में जुटे हैं क्योंकि उन्हें अगला लिटिल चैंप जो बनना है. टैलेंट हंट से लेकर सेलेब्रेटी शोज तक रियलिटी के तरकश में तीर ही तीर मौजूद हैं.

सेलेब–रियलिटी

जानी–मानी हस्तियों को लेकर बनाए गए रियलटी शो दर्शकों को ख़ूब लुभाते रहे हैं. भारत में झलक दिखला जा, नच बलिए, बिग बॉस और दस का दम–2 जैसे कार्यक्रम आए हैं.

शरारत भरी रियलिटी

लोगों को अजीब स्थितियों में फंसाकर उसका लुत्फ़ उठाने वाले शोज भी कम लोकप्रिय नहीं हुए. एमटीवी बकरा और छुपा रुस्तम जैसे शो इसी तरह से लोगों का मोनरंजन करते हैं.

गेम–शो

क्वीज और दूसरे खेलों पर आधारित रियलिटी शो जैसे *कौन बनेगा करोड़पति, दस का दम, पोकर फेस* भी काफी लोकप्रिय रहे हैं.

टैलेंट हंट

गायकों और अन्य कलाकारों को अपनी कला दिखाने का मौका देने वाले रियलिटी शो शायद भारत में सबसे लोकप्रिय रहे हैं. इनके अलावा मेकओवर, शादी–डेटिंग (राखी का स्वयंवर), एडवेंचर (ख़तरों के खिलाड़ी, इस जंगल से मुझे बचाओ) और समाज के अन्य मुद्दों (बिगेस्ट लूजर) से जुड़े शो भी भारतीय टीवी पर क़ब्ज़ा जमा चुके हैं.

भारतीय टीवी के रियलिटी शो

भारत में अधिकतर रियलिटी शो विदेशी शो की तर्ज़ पर ही बनाए गए हैं. चैनल वी के टैलेंट हंट (जिससे वीवा बैंड उभरा) और एमटीवी बकरा को भारत के पहले रियलिटी शो के रूप में देखा जाता है. इसमें कोई शक़ नहीं कि अमिताभ बच्चन द्वारा संचालित कौन बनेगा करोड़पति भारतीय टीवी का सबसे हिट रियलिटी शो रहा है.

एमटीवी बकरा

एमटीवी के मज़ेदार वीजे साइरस भरूचा का अपने शिकारों को फंसा कर मूर्ख बनाना कौन भूल सकता है. अपने ज़माने में युवाओं के बीच यह सबसे लोकप्रिय शो रहा.

कौन बनेगा करोड़पति

इसी शो ने भारत में रियलिटी टीवी को स्थापित किया, बॉलीवुड के सुपरस्टार अमिताभ बच्चन को लेकर बने इस गेम शो ने सबसे ज़्यादा सफलता हासिल की, अमिताभ के बाद इसे सुपरस्टार शाहरुख ख़ान ने होस्ट किया.

इंडियन आइडल

अमेरिकन आइडल की तर्ज़ पर बना यह शो अपने पहले सीजन में काफी हिट रहा. इसने अभिजीत सावंत को सितारा बना दिया.

सारेगामा

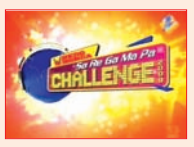

शायद सारेगामा भारत का सबसे पुराना टैलेंट हंट शो रहा है. सोनू निगम, शान और आदित्य नारायण जैसे कलाकार इस शो के होस्ट रहे. पहले यह जजमेंट आधारित सो था लेकिन इंडियन आइडल की सफलता के बाद इसका फार्मेट बदला गया, इसका नाम सारेगामापा हो गया और इससे हिमेश रेशमिया, बप्पी लाहिड़ी, विशाल–शेखर, प्रीतम, शंकर महादेवन, इस्माइल दरबार जैसे संगीतकारों को जोड़ा गया. बच्चों के लिए सारेगामा लिटिल चैंप्स शो बना.

लाफ्टर चैलेंज

लोगों को हंसाते हुए लाफ्टर चैलेंज ने कई स्टैंज–अप कॉमेडी कलाकारों को मंच दिया. इसकी सफलता से भारत में स्टैंड–अप कॉमेडी को नई जान मिली. इसके जज शेखर सुमन और नवजोत सिंह सिद्धू भी ख़ासे लोकप्रिय हो गए. अब तो ज़ी टीवी पर महिलाओं की कॉमेडी अलग से चल रही है.

बिग बॉस

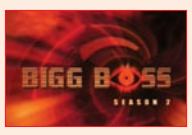

बिग ब्रदर के इस भातीय अवतार को भी लोग पसंद कर रहे हैं, इसके दो सीजनों में राखी सावंत, रवि किशन, राहुल महाजन, मोनिका बेदी, राहुल राय, आशुतोष जैसी चर्चित हस्तियों ने भाग लिया.

विदेशों में लोकप्रिय कुछ रियलिटी शो

कैंडिड कैमरा : एलेन फंट नाम के शख़्स ने इस रियलिटी शोज के ज़रिए लोगों को शरारतों का शिकार बनाकर उन्हें कैमरे में क़ैद किया. इसे पहला रियलिटी शो माना जाता है.

दी अपरेंटिस : इस शो में अरबपति व्यापारी डोनाल्ड ट्रंप अपने नए कर्मचारी का चुनाव करते हैं. ट्रंप की प्रसिद्ध लाइन यू आर फायर्ड बहुत लोगकप्रिय है.

अमेरिकन आईडल : नए गायकों को अपनी आवाज़ के ज़रिए पहचान बनाने का मौका देने वाले शो ने साइमन कॉवेल, रैंडी जैक्सन और पाउला अब्दुल जैसे नाम संगीत जगत को दिए.

द सिंपल लाइफ : दर्शकों के लिए सेलेब्रेटिज निकोल रिची और पेरिस हिल्टन को कई तरह की नौकरियां करते देखना बहुत रोचक था.

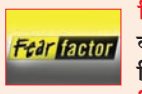

फियर फैक्टर : इसके प्रतिभागियों को दिए जाने वाले ख़तरनाक टास्कों ने दर्शकों को बहुत रोमांचित किया. बाद में इसके सेलेब्रेटी वर्जन भी बनाए गए.

बिग ब्रदर : जार्ज ओरवेल कि किताब 1984 के रहस्यमयी किरदार के नाम पर बने इस शो में लोगों को दुनिया से अलग एक घर में बंद कर दिया जाता था, जहां उनकी हर हरक़त पर कैमरों की नज़र होती थी.

दुनिया

फादर ने ही की थी अभया की हत्या

■ सीबीआई ने दायर की चार्जशीट

केरल सरकार के निवेदन पर सीबीआई ने सिस्टर अभया की मौत का मामला हत्या के मामले के तौर पर रजिस्टर्ड किया. सीबीआई के निदेशक अश्विनी कुमार बताते हैं कि इस केस को सुलझाने में सीबीआई को जाने कितने उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ा. हत्या के लगभग एक साल बाद यह मामला सीबीआई के पास आया था. तब तक सारे सबूत मिट चुके थे. हत्या के समय नन द्वारा पहने गए कपड़े और दूसरी निजी चीज़ें, ग़ायब थीं. पोस्टमार्टम रिपोर्ट, केमिकल रिपोर्ट और लेबोरेटरी रिपोर्ट्स को मिटा दिया गया था या उन पर ओवर राइटिंग की गई थी. यह बात भी सामने आई कि हत्या की शुरुआती जांच में लेबोरेटरी अधिकारियों ने पुलिस को जांच में मदद नहीं की थी. पोस्टमार्टम रिपोर्ट में इस बात का ज़िक्र था कि अभया की मौत डूबने से हुई थी.

रूबी अरुण

आख़िरकार सीबीआई ने 17 सालों की तफ्तीश के बाद केरल के बेहद चर्चित और विवादित सिस्टर अभया हत्याकांड में चार्जशीट दाखिल कर ही दी. सीबीआई ने सिस्टर अभया के हत्यारे के तौर पर फादर थामस कोट्टोर, फादर जोश पुथरूकाइल और नन सिस्टर सेफी को नामित किया है. सीबीआई ने यह चार्जशीट आईपीसी की धारा 302,201 और 449 / 34 के तहत दाख़िल की है. सीबीआई ने अपनी चार्जशीट में केरल के चर्चों में फैले भ्रष्टाचार का साफ तौर पर ज़िक्र किया है और कहा है कि सिस्टर अभया उर्फ बीना थामस इसी अराजकता की शिकार बनी.

फादर थामस कोट्टोर, फादर जोश पुथरूकाइल और नन सिस्टर सेफी ने अपने अवैध संबंधों को छुपाने की ग़रज़ से सिस्टर अभया का क़त्ल कर दिया. एर्नाकुलम के चीफ ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट की अदालत में सीबीआई द्वारा पेश किए दस्तावेजों में इन तीनों आरोपियों के ख़िलाफ़ ठोस सबूत हैं. इनमें 133 साक्षियों, 67 दस्तावेजों, सात ठोस सबूतों के अलावा आरोपियों के ब्रेन मैपिंग टेस्ट, पॉलीग्राफी टेस्ट, फिंगर प्रिंट टेस्ट और नार्को टेस्ट के नतीजे शामिल हैं. इस मुक़ाम तक पहुंचने की ख़ातिर सीबीआई को बेहद जद्दोज़हद करनी पड़ी है. तमाम आरोपों से गुज़रना पड़ा है और धार्मिक संगठनों का तीव्र विरोध झेलना पड़ा है. साक्ष्यों को जुटाने के लिए सीबीआई को बड़ी मगज़मारी करनी पड़ी. 27 मार्च 1992 को जब सिस्टर अभया की लाश उसके हॉस्टल में पाई गई तो उसकी मौत के मामले की छानबीन का ज़िम्मा स्थानीय पुलिस को सौंपा गया. अभया की मौत का मामला सेक्शन 174 के तहत अप्राकृतिक मौत के रूप में दर्ज़ किया गया. क्राइम ब्रांच सीआईडी ने जांच के नाम पर लगभग दस महीनों तक मामले को लटकाए रखा और 30 जनवरी 1993 को इस केस का क्लोज़र रिपोर्ट दाख़िल कर दिया. सीआईडी ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सिस्टर अभया की हत्या नहीं हुई है बल्कि उसने आत्महत्या की थी. लेकिन इस दरम्यान यह मामला लगातार सुर्ख़ियों में बना रहा था. सीआईडी की रिपोर्ट आते ही जैसे सामाजिक संगठनों में उफान आ गया. उन्होंने इस नतीजे का विरोध करना शुरू कर दिया.

तब केरल सरकार के निवेदन पर सीबीआई ने सिस्टर अभया की मौत का मामला हत्या के मामले के तौर पर रजिस्टर्ड किया. सीबीआई के निदेशक अश्विनी कुमार बताते हैं कि इस केस को सुलझाने में सीबीआई को जाने कितने उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ा. हत्या के लगभग एक साल बाद यह मामला सीबीआई के पास आया था. तब तक सारे सबूत मिट चुके थे. हत्या के समय नन द्वारा पहने गए कपड़े और दूसरी निजी चीज़ें, ग़ायब थीं. पोस्टमार्टम रिपोर्ट, केमिकल रिपोर्ट और लेबोरेटरी रिपोर्ट्स को मिटा दिया गया था या उन पर ओवर राइटिंग की गई थी. यह बात भी सामने आई कि हत्या की शुरुआती जांच में लेबोरेटरी अधिकारियों ने पुलिस को जांच में मदद नहीं की थी. पोस्टमार्टम रिपोर्ट में इस बात का ज़िक्र था कि अभया की मौत डूबने से हुई थी.

लिहाज़ा इस मामले में सीबीआई के सामने बहुत मुश्किलें थीं. यहां तक कि सच तक पहुंचने के लिए इस मामले के शुरुआती जांच अधिकारी वी वी आगस्टिन का नार्को टेस्ट भी कराना पड़ा. आगस्टिन हत्या की सुबह ही हॉस्टल में वारदात की जगह गए थे, पर वे सबूत जुटाने में नाकाम रहे थे. सबूत जुटाने के लिए सीबीआई ने डमी टेस्ट किया. सीबीआई की तफ्तीश में गवाहों के बयान, उस आधार पर मिले सबूतों और परिस्थितिजन्य साक्ष्यों से यह बात साफ हो चुकी थी कि दो फादर और एक नन के बीच के त्रिकोणीय यौन संबंधों को छुपाने की वजह से अभया का क़त्ल हुआ था. मामला चूंकि कैथोलिक चर्च से जुड़ा था इसलिए हर एक क़दम सावधानी से उठाना था. अभया की लाश कोट्टयम के सेंट पीयूष एक्स कान्वेंट हॉस्टल के पिछवाड़े स्थित एक कुएं से पाई गई थी. उसके शरीर और सिर पर चोट के गहरे निशान थे. संयोग से इस बात का ज़िक्र पोस्टमार्टम रिपोर्ट में भी था. जब सीबीआई ने तहक़ीक़ात शुरू की, तो उसके हाथ कोई सिरा नहीं आ रहा था. तब डमी टेस्ट किया गया. डमी को हर एंगल से घुमा कर उस कुएं में फेंका गया, ताकि पता चल सके कि अगर अभया ने आत्महत्या की थी तो कुएं में कूदने के दौरान उसे कहां कहां चोटें लग सकती थीं. इस टेस्ट से सीबीआई के हाथ बड़े अहम तथ्य लगे. पाया गया कि पोस्टमार्टम में जिन चोटों की चर्चा है, वे तो कुएं में इस तरह कूदने से आ ही नहीं सकतीं. ख़ासकर अभया के सिर पर लगी गहरी चोट.

शरीर पर पड़े घिसटने के निशान. पोस्टमार्टम रिपोर्ट में भी अभया की मौत का कारण सिर पर लगे चोट को ही बताया गया था. बस, सीबीआई ने इसे आधार बना कर अपनी तफ्तीश आगे बढ़ाई. फिर तो शक़ की बिना पर आरोपियों से पूछताछ और गवाहों के बयानों का सिलसिला चल निकला. भारी विरोध के बावजूद आरोपियों का नार्को टेस्ट कराया गया. मज़े की बात तो यह है कि नार्को टेस्ट में तीनों ही आरोपियों ने अपना गुनाह क़बूल किया है. पर होश में वे लगातार मुकरते रहे हैं. देर से ही सही, सीबीआई ने जांच कार्य पूरा करने में सफलता पाई.

ruby.chauthiduniya@gmail.com

पहले भी होती रही हैं शिकायतें

वैसे तो यह बात कोई नई नहीं कि हमारे देश में धर्म की आड़ में किस कदर व्यभिचार होता है. गाहे-बगाहे होने वाली ऐसी वारदातें हमारे समाज और धर्म के तथाकथित ठेकेदारों का विकृत चेहरा सामने ले आती हैं. न सिर्फ़ चर्च बल्कि हमारे मंदिर और मठों में भी यौनाचार का घिनौना खेल खेला जाता रहा है. भारतीय संस्कृति की रक्षा को अपनी नैतिक ज़िम्मेदारी बताने वाले ऐसी शर्मनाक हरकतें कर बैठते हैं कि मानवता कराह उठती है. समाज भयाक्रांत हो उठता है. अपनी लफ्फाज़ियों में औरत को देवी बताने वाले संत और महात्मा मौक़ा पाते ही उसी देवी सरीखी औरत की अस्मत को तार-तार कर देते हैं. पिछले दिनों देश के कई नामचीन साधु-महात्माओं के नामों की चर्चा उनके अवैध कारनामों के कारण ख़ूब हुई है. केरल के कैथोलिक चर्चों में खुलेआम यौनचार होता है.

इस बात के प्रमाण पहले भी मिले हैं. सिस्टर अभया हत्याकांड में सीबीआई की जांच से भी यही बात साबित होती है. समलैंगिकता के बहुतायत मामले चर्चों में खुलेआम पाए जाते हैं. सेक्स का नंगा खेल होता है. ननों के साथ ज़बरदस्ती की जाती है. उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ उनके साथ शारीरिक संबंध बनाए जाते हैं. केरल के एक कैथोलिक चर्च की एक पूर्व नन 52 वर्षीय सिस्टर जेस्मे ने अपनी आत्मकथा में इन चर्चों में होने वाले दुराचारों का कच्चा चिट्ठा खोला है. सिस्टर जेस्मे ने बताया है कि ज़्यादातर ननें लेस्बियन होती हैं और वे जबरन नई और कम उम्र की ननों से संबंध बनाती हैं. आमीन नामक इस किताब में जेस्मे ने लिखा है कि उनका ख़ुद भी यौन उत्पीड़न हो चुका है. जब वह सेंट मारिया कालेज में टेन प्लस टू के छात्रों को पढ़ाती थीं तो उनका साबक़ा मलयालम पढ़ाने वाली एक नन से पड़ा था. वह नन रात में उनके बिस्तर पर आ जाती थी और उनका उत्पीड़न करती थी. अपने विरोधों के बावजूद वह उस लेस्बियन नन को नहीं रोक पाती थीं. दूसरा सेक्सुअल ट्रॉमा उन्होंने तब झेला जब वह एक रिफ्रेशर कोर्स के लिए बेंगलुरू गईं. वहां वह एक फादर की हवस का शिकार बनीं. जब जेस्मा ने अपनी आत्मकथा लिखनी शुरू की थी तो उन्हें कैथोलिक चर्चों ने धमकियां भी दीं. पर उन्होंने हार नहीं मानी.

सिस्टर अभया ही एक ऐसी नहीं थी जो सेक्स के इस खेल की शिकार बनी. 11 अगस्त 2008 को कोल्लम के सेंट मैरी की सिस्टर अनूपा ने अपनी सीनियर नन द्वारा किए जा रहे यौन उत्पीड़न से तंग आकर अपनी जान दे दी. उसने आत्महत्या के पहले लिखे नोट में यह बात कही थी. 26 अगस्त 2008 को नित्य सहाय माता बालिका मंदिरम में रहने वाली दो बच्चियों ने ज़हर खाकर आत्महत्या की कोशिश की. वजह वही-उनके साथ की जा रही ज़बरदस्ती. छह महीने बाद ही 11 फरवरी 2009 को तिरुअनंतपुरम के सेंट मैरी की सिस्टर जोसेफिन ने अपनी सीनियर नन के यौन उत्पीड़न से तंग आकर आत्महत्या कर ली. 1995 में चंगानाचेरी आर्कडायोसीज़ के प्रीस्ट ने लगातार एक 15 साल की बच्ची का बलात्कार किया. 1998 में वह मासूम एक बच्चे की मां बन गई तब यह मामला उछला और उस फादर के ख़िलाफ़ रेप और अपहरण का मामला दर्ज़ हुआ. 1998 में कोझीकोड ज़िले के सेक्रेड हर्ट कान्वेंट में सेक्सुअल कारणों से एक नन की हत्या कर दी गई. सेरेना जैकब नाम की नन ने इसलिए अपनी जान दे दी, क्योंकि वह लगातार एक 60 साल की बूढ़ी नन और फादर के हवस की शिकार बन रही थी. ऐसे अनगिनत मामले हैं. कुछ सामने आ पाते हैं तो बहुत सारे धर्म की आड़ में दबे रह जाते हैं और सेक्स का यह घिनौना खेल बदस्तूर जारी रहता है.

डमी टेस्ट ने दिलाई सीबीआई को सफलता

कोट्टायम के अरिकारा के रहने वाले एम थामस की 21 साल की बेटी बीना थामस उर्फ सिस्टर अभया. बेहद मिलनसार और सरल लड़की थी. शांत और पढ़ाई में लीन रहने वाली वह कोट्टायम के बीसीएम कॉलेज से प्री डिग्री कोर्स करने आई थी, ताकि नन बन कर समाज की सेवा कर सके. अभया सेंट पीयूस एक्स कान्वेंट हॉस्टल में रहती थी. उन दिनों उसकी परीक्षाएं चल रही थीं. लिहाज़ा अभया देर रात और अहले सुबह पढ़ाई किया करती थी. 27 मार्च 1992 के तड़के अभया अपनी पढ़ाई में मशगूल थी. उसे प्यास लगी. वह पानी लाने हॉस्टल के किचन में जाने लगी. जैसे ही वह किचन के पास पहुंची, उसकी नज़र पास वाले कमरे पर पड़ी. उस कमरे का दरवाज़ा थोड़ा सा खुला हुआ था. और जो कुछ नज़र आ रहा था वह अभया के लिए बिजली टूट पड़ने जैसा था. उसने देखा कि उसकी टीचर सिस्टर सेफी कॉलेज के दो फादरों-फादर थामस कोट्टोर, फादर जोश पुथरूकाइल-के साथ बेहद आपत्तिजनक हालत में हैं. यह सब देख सिस्टर अभया के होश उड़ गए. उसके हाथ से पानी का जग छूट कर गिर गया. आवाज़ सुनकर तीनों आरोपी कमरे से बाहर निकले. उन्होंने सिस्टर अभया को पकड़ना चाहा, तो उसकी चीख़ निकल गई. तब फादर जोश पुथरूकाइल ने अभया का मुंह दबाया और फादर थामस कोट्टोर के साथ मिलकर उसे घसीटते हुए किचन में ले गए. उन्हें डर था कि अभया कहीं उनकी पोल ना खोल दे. वे आवेश में आ चुके थे. उनकी नज़र किचन में पड़े एक बड़े चाकू पर पड़ी, जो नारियल छीलने के काम आता था. सिस्टर सेफी ने वह चाकू उन दोनों को पकड़ाया. उन्होंने उसी से अभया के सिर पर गहरा वार किया. अभया बेहोश हो गई. अब उसे ठिकाने किस तरह लगाया जाए, यह सवाल उनके सामने था. पहले तो उन्होंने सोचा कि ऊपरी मंज़िल पर ले जाकर अभया को नीचे फेंक दिया जाए ताकि मामला आत्महत्या का लगे. हालांकि, उनको यह भी डर था कि दूसरों को कहीं इससे वारदात की जानकारी न हो जाए. इसलिए ऐसा नहीं हो सका. तब यह तय हुआ कि हॉस्टल के पिछले गेट की तरफ़ स्थित कुएं में लाश को फेंक दिया जाए.

सुबह हुई तो दूसरी ननों ने अभया की लाश कुएं में तैरती देखी. जब तक लोगबाग कुछ समझते सेफी ने यह अफ़वाह फैला दी कि अभया ने आत्महत्या कर ली है. दोनों आरोपी फादर भी हॉस्टल पहुंचे और दिखावे के लिए अभया की शोकसभा में उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की. अभया हालांकि बड़ी ख़ुशमिजाज़ लड़की थी, इसलिए उसके जानने वालों को यह बात नहीं जमी कि वह आत्महत्या भी कर सकती है. खुसफुसाहट बढ़ने लगी. सेफी और दोनों फादरों के बीच के अवैध संबंधों की जानकारी और भी कुछ लोगों को थी, जिन्होंने बाद में सीबीआई को गवाही भी दी.

अभया के माता-पिता बेहद ग़रीब थे. जब सीआईडी ने अभया की मौत की क्लोजर रिपोर्ट आत्महत्या के तौर दाखिल कर दी तो उन्होंने प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तक से फरियाद की. लोगों को लगा कि हाई प्रोफाइल मामला होने और चर्च से जुड़ा मामला होने से कहीं इस केस को दबा न दिया जाए और हत्यारे बच न निकलें. कई बड़े नेताओं के नाम भी उछले. सीबीआई को कोर्ट की फटकार भी झेलनी पड़ी. 19 नवंबर 2008 को सीबीआई ने तीनों आरोपियों को गिरफ़्तार किया और आख़िरकार सभी संशयों पर विराम लगा और सीबीआई ने आरोपियों के ख़िलाफ़ चार्जशीट दाख़िल कर ही दी.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

एम जे अकबर

बजट से क्यों मुस्कुराए बंगाली मुसलमान

किसी भी समुदाय के ऊपर थोपा जाने वाला सबसे बड़ा सांप्रदायिक दंड उनको शिक्षा से महरूम कर देना है. अज्ञान ही तो ग़रीबी का दूसरा चेहरा है. कोई भी अपनी पसंद से अशिक्षित नहीं होता. आख़िर कौन सा बच्चा किसी क्लासरूम के बजाय बीड़ी मोड़ते हुए अपनी उंगलियों को चोटिल करना चाहेगा?

बंगाल के मुर्शिदाबाद में वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी द्वारा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (एएमयू) की शाखा खोलने के लिए 25 करोड़ का प्रावधान करना बेहद कम है, लेकिन बहुत देर अभी नहीं हुई है. इतनी रक़म में आपको केवल डिग्री कॉलेज ही मिल सकता है, लेकिन कोई कॉलेज नहीं होने से तो यह लाख गुना अच्छा है.

बंगाल में इसको लेकर दो आपत्तियां दर्ज की गई हैं. पहली यह कि एएमयू बहुत हद तक मुस्लिम चरित्र रखता है, किसी यूनिवर्सिटी का नहीं. एएमयू के बारे में यह उतना ही सच है कि जितना स्टीफंस कॉलेज का ईसाई होना. एएमयू के लड़के इस्लामी उग्रवाद या कट्टरता में ख़ास दिलचस्पी लेकर उसे नहीं दिखाते. आप इसे हमारे उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी के मामले में देख सकते हैं, जो यहां के छात्र होने के साथ-साथ कुलपति रहे हैं. मुझे यह नहीं दिखता कि यह एएमयू के अपने देश में भारतीय तालिबान के गुप्त संगठन के सदस्य थे.

अगर हम इस बहस में 1940 के दशक को भी घसीटें तो केवल उस हौलनाक दशक तक ही ख़ुद को क्यों सीमित रखें? क्या हम सचमुच 1940 के पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय की अन्यायपूर्ण दाख़िला नीति पर भी चर्चा करना चाहते हैं? क्या हमें और आगे चर्चा करनी चाहिए? जब हम 1967-70 के बीच प्रेसीडेंसी के छात्र थे, तब एक मुसलमान इसके हिंदू हॉस्टल में जगह नहीं पा सकता था. वजह केवल एक थी कि वह हॉस्टल केवल हिंदुओं के लिए आरक्षित था. शायद हममें से किसी को उस वक़्त इस हालात को सुधारने के लिए किसी बड़े मीडिया कैंपेन की याद नहीं होगी.

सुधार हुए तो इसलिए कि भारतीय ऐसा चाहते थे, न कि इसलिए कि मीडिया चाहती थी. भारत के मामले में एक ज़ोरदार बात तो यही है कि हमने अपने भूतकाल से बेहतरीन चीज़ों को ले लिया है और आगे बढ़े. बिना किसी हो-हंगामे के हमने बदतर को पीछे छोड़ दिया है. इसे ज़रा हमारे एक पड़ोसी से मिलाकर देखें जो कि बुराइयों में ही निवेश कर रहा है और अपने इतिहास और संस्कृति की बेहतरीन चीज़ों को नकार रहा है. भारतीय एक बेहतर वारिस हैं. जिस तरह हमारे दूसरे संस्थान बंटवारे के पहले के कुछ मूल्यों से ख़ुद को दूर कर चुके हैं उसी तरह एएमयू ने भी किया है.

बेहतरीन के नाम पर अच्छे को ख़त्म कर देना एक पुरानी और मेहनत वाली घात की पद्धति है. ज़ाहिर तौर पर यह सच है कि एएमयू की अकादमिक गुणवत्ता कम हुई, लेकिन फिर भी यह उन निजी संस्थानों से बेहतर ही है जो केवल पैसा कमाने की मशीन बने हुए हैं, और शिक्षा के नाम पर केवल लूट रहे हैं. मांग ने आपूर्ति का आंकड़ा बिगाड़ दिया है और बीच में लुटेरे ही इस जगह को भर रहे हैं. जो महंगी शिक्षा का ख़र्च उठा सकते हैं, वे सबसे ज़्यादा पैसे ख़र्च कर रहे हैं. मुर्शिदाबाद में अगर एएमयू की शाखा उठी है तो इसलिए कि दो दशकों से कांग्रेस राज, तीन दशकों के मार्क्सवादी शासन और एक दशक के भ्रम वाले दशक में किसी ने भी कुछ नहीं किया.

एएमयू के साथ कुछ गंभीर समस्याएं हैं, जिनको दुरुस्त करने की ज़रूरत है. इसका कोई तर्क नहीं है कि क्यों कोई भी अच्छी गुणवत्ता वाली भारतीय यूनिवर्सिटी किसी निम्नवर्गीय लेकिन साझा बीमारी से ग्रस्त हो रही है. फ़िलहाल इसका प्रशासन स्कैंडल से भी हवा लग चुका है, जिसे दिल्ली की बांटने वाली राजनीति पिट चुका है. इकाइयां खोलनी हैं तो उसे अवश्य ही प्रशासनिक क्षमता और अकादमिक गुणवत्ता बरक़रार रखनी होगी. वरना तो यह उन्हीं मुसलमानों को झांसा देगी, जिनकी सेवा करने का यह दावा करती है. उसके बाद तो इकाइयां उसे बढ़ाने की जगह मातृसंस्था को गिराने का ही काम करेंगी.

यहां एक विरोधाभास भी है. अलीगढ़ शहर के साथ ही उत्तर प्रदेश के कई कॉलेजों ने एएमयू से संबद्धता मांगी थी, लेकिन यूनिवर्सिटी के अल्पसंख्यक चरित्र को बरक़रार रखने के लिए मना कर दिया गया. यह अल्पसंख्यक चरित्र हालांकि संसद में 1981 के एक संशोधन के ज़रिए धूसर कर दिया गया था. संदेह आधिकारिक न्यायाधीशों और राजनेताओं को एक सा ही भाता है.

मुसलमान एक गंभीर भूल करेंगे अगर वे एएमयू को उनकी शैक्षिक ज़रूरतों का एकमात्र जवाब बना देते हैं. शिक्षा को समुदाय आधारित होना चाहिए और मुख्य उद्देश्य स्कूल स्तर पर बेहतर शिक्षा मुहैया कराना होना चाहिए. आख़िर यही मुसलमानों को सेंट जेवियर या प्रेसिडेंसी में दाख़िला दिलाने में मदद करेगा.

सच्चर समिति के आंकड़े हमें बंगाल के बारे में कुछ ज़रूरी तथ्य बताते हैं. राज्य की साक्षरता दर 68.6 फ़ीसदी है. मुसलमानों में यह कम होकर 57.5 फ़ीसदी हो जाती है. शहरी हालात हालांकि बेहतर हैं. यहां के आंकड़े क्रमशः 81 फ़ीसदी और 66 फ़ीसदी हैं. हालांकि जो सबसे उत्साहवर्धक बात है, वह यह कि स्कूलों में दाख़िले की दर काफ़ी बढ़ी है. 2004-05 में छह से 14 साल के मुस्लिम बच्चों में से 82.8 फ़ीसदी स्कूलों में दाख़िला ले रहे थे, जबकि पूरे राज्य का आंकड़ा 85.7 फ़ीसदी है. यहीं यह बात साफ़ हो जाती है कि लोग इस बात से सहमत हो चुके हैं कि शिक्षा ही बेहतर भविष्य का एकमात्र रास्ता है. लेकिन उसके बाद क्या होता है? 2001 में माध्यमिक शिक्षा पूरी करने वाले 26 फ़ीसदी थे. जिन्होंने इसके बाद का स्तर पूरा किया और कॉलेज जाने लायक़ बने उनकी संख्या केवल 11.9 फ़ीसदी थी. 2001 से निश्चय ही इसमें सुधार हुआ होगा, लेकिन हालात तो बिल्कुल साफ़ हैं कि जितने ऊंचे स्तर की बात करेंगे उतनी कम शिक्षा देखेंगे.

यही वजह है कि एएमयू की संबद्ध इकाई के लिए 25 करोड़ रुपये बजट के डर से नहीं आए हैं. हालांकि ज़ाहिर तौर पर यह बेहद कम है.

बेहतरीन के नाम पर अच्छे को ख़त्म कर देना एक पुरानी और मेहनत वाली घात की पद्धति है. ज़ाहिर तौर पर यह सच है कि एएमयू की अकादमिक गुणवत्ता कम हुई, लेकिन फिर भी यह उन निजी संस्थानों से बेहतर ही है. जो केवल पैसा कमाने की मशीन बने हैं, और शिक्षा के नाम पर केवल लूट रहे हैं. मांग ने आपूर्ति का आंकड़ा बिगाड़ दिया है और बीच में लुटेरे ही इस जगह को भर रहे हैं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

जब तोप मुक़ाबिल हो

मुट्ठी भर के लिए क्यों क़ुर्बान हो पूरे देश का विश्वास?

तीन खरब वाले इस बाज़ार को चलाने वाले क्या भारतीय संसद को प्रभावित कर ले जाएंगे? दुनिया में जिस तरह माफ़िया संगठन बढ़ रहे हैं और उनका प्रभाव बढ़ रहा है, उससे इस डर का आधार पुख़्ता हो रहा है. देश की न्यायपालिका में भी ऐसे न्यायाधीशों की संख्या बढ़ रही है जो अपने को ख़तरनाक सुनवाई से अलग करते जा रहे हैं.

सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि भारत सरकार अपना दिमाग़ साफ करे और धारा तीन सौ सतहत्तर के ऊपर अपनी स्पष्ट राय तीन हफ्तों के भीतर बताए. कहानी दिल्ली हाईकोर्ट से शुरू हुई, सुप्रीम कोर्ट पहुंची और अब सरकार और संसद पर फ़ैसला लेने की ज़िम्मेदारी आ गई है. अभी तक सरकार ने स्पष्ट राय तो नहीं बताई है लेकिन क़ानून मंत्री ने इशारा दिया है कि वह इस धारा को ख़त्म करने के पक्ष में हैं. दूसरी ओर गृह मंत्रालय इस धारा को बनाए रखने के पक्ष में है. संसद ख़ामोश है और राजनैतिक दलों के नेता कुछ भी कहने से बच रहे हैं. अगले तीन हफ्ते निर्णायक हो सकते हैं और इसके साथ ही तय हो जाएगा कि भारत किस दिशा की ओर जाएगा या दूसरे शब्दों में, क्या भारत अगले कुछ सालों में सेक्स की बड़ी मंडी में तब्दील होगा या नहीं.

तीन सौ सतहत्तर धारा कहती है कि किसी भी प्रकार का अप्राकृतिक यौन संबंध क़ानूनन अपराध है और इस जुर्म में दस साल या उम्र क़ैद की सजा दी जा सकती है. यह छोटा सा क़ानून अब तक भारत को एक बड़े विदेशी सेक्स बाज़ार का हिस्सा बनने से बचाता रहा है. लेकिन अब लगता है कि ऐसा नहीं हो पाएगा. देश के ही एक एनजीओ के ज़रिए हाईकोर्ट में इस क़ानून को हटाने की मांग उठवाई गई और देश में माहौल बनाया गया कि समलैंगिकों के अधिकारों का इस क़ानून की वजह से उल्लंघन हो रहा है. बहाना एचआईवी का लिया गया कि अगर यह क़ानून न हटा तो समलैंगिक सामने नहीं आएंगे और एचआईवी देश में तेज़ी से फैलता जाएगा, क्योंकि समलैंगिक हाईरिस्क ग्रुप में आते हैं.

अभी तक दुनिया में कोई वैज्ञानिक अध्ययन नहीं है जिसमें यह साबित हुआ हो कि समलैंगिकता से एचआईवी फैलता है. हाईकोर्ट में भी कोई अध्ययन नहीं प्रस्तुत किया गया. अब इस तर्क का खोखलापन देखें. अगर समलैंगिकता से एचआईवी फैलता है तो समलैंगिकता की संस्कृति के ख़िलाफ़ अभियान चलाना चाहिए और समलैंगिकता की वकालत करने वालों के ख़िलाफ़ कठोर क़ानूनी प्रावधान करना चाहिए. इसकी जगह उल्टा काम किया जाने वाला है, समलैंगिकता को क़ानूनी मान्यता दे दो, तेज़ी से एचआईवी बढ़ने दो, हाईरिस्क ग्रुप में लोगों की संख्या बढ़े, फिर उनका इलाज हो और चूंकि इलाज है नहीं, इसलिए लोगों को मरने दो. क्या हाईकोर्ट को इस संस्था के तर्क में अंतर्विरोध नज़र नहीं आया?

यह तर्क वैसा ही है जैसे कहें कि नशीली दवाओं के ख़िलाफ़ बने क़ानून समाप्त कर दिए जाएं, क्योंकि इससे चोरी-छिपे नशा करने का चलन बढ़ रहा है और जब क़ानून ख़त्म हो जाएगा तो ड्रग्स लेने वाले खुले आम सामने आएंगे और तब उनका इलाज हो सकेगा. दरअसल यह तर्क नहीं कुतर्क है, क्योंकि इसे बढ़ाएं तो हर वह क़ानून समाप्त कर देना चाहिए जो अपराध रोकने के लिए बना है.

पंद्रहवीं लोकसभा और उसके सदस्यों से बनी सरकार को चेतावनी देना हमारा फ़र्ज़ है. समलैंगिकों के अधिकार के बहाने देश को एक ख़तरनाक मंडी में बदलने की साज़िश रची जा रही है. अगर यह लोकसभा दलों की सीमाओं से ऊपर उठकर फैसला नहीं लेती तो यह लोकसभा देश की संस्कृति, सभी धर्मों की अच्छाइयों को तबाह करने की अपराधी मानी जाएगी. इस्लाम कहता है कि अप्राकृतिक यौन संबंध नाजायज़ है, हिंदू धर्म भी यही कहता है, क्रिश्चियन, सिख जैन धर्म भी यही कहते हैं. इस सर्वमान्य मान्यता को बदलने का अधिकार क्या लोकसभा को है? हमारा कहना है कि नहीं. पर यहीं सवाल फिर खड़ा होता है कि सभी धर्मों के धर्माचार्य सामूहिक रूप से क्यों खड़े नहीं हो रहे और क्यों वे मानसिक विकार के ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठा रहे? अख़बारों में छिटपुट राय भर दे देने से धार्मिक संगठनों का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता. उन्हें संभावित सेक्स हमले के ख़िलाफ़ खड़ा होना होगा, अन्यथा उनका धर्म ही उन्हें कभी माफ नहीं करेगा. अगर वे अभी भी खड़े नहीं हुए तो भारत को अमेरिकी माफ़िया के कंट्रोल वाले सेक्स बाज़ार में बदलने की साज़िश में शामिल माना जाएगा. यह आग उनके घरों में भी पहुंचेगी और वे पाएंगे कि उनकी भी कोई बहू-बेटी इस बाज़ार का हिस्सा बन गई है.

तीन सौ सतहत्तर धारा कहती है कि किसी भी प्रकार का अप्राकृतिक यौन संबंध क़ानूनन अपराध है और इस जुर्म में दस साल या उम्र क़ैद की सजा दी जा सकती है. यह छोटा सा क़ानून अब तक भारत को एक बड़े विदेशी सेक्स बाज़ार का हिस्सा बनने से बचाता रहा है. लेकिन अब लगता है कि ऐसा नहीं हो पाएगा. देश के ही एक एनजीओ के ज़रिए हाईकोर्ट में इस क़ानून को हटाने की मांग उठवाई गई और देश में माहौल बनाया गया कि समलैंगिकों के अधिकारों का इस क़ानून की वजह से उल्लंघन हो रहा है.

हमारे देश का मीडिया तो शायद यही चाहता है. उसने इस देश की समस्याओं को अरसे से नज़रअंदाज़ करना शुरू कर दिया था, अब तो उसने बिना छानबीन के देश में ऐसा माहौल बनाना शुरू कर दिया है मानो हाईकोर्ट के फ़ैसले के बाद पहली बार आज़ादी की हवा आई है. जो मीडिया को नियंत्रित करते हैं, वे शायद पचास अरब के टर्नओवर वाले सेक्स व्यापार में अपनी हिस्सेदारी देख रहे हैं. मीडिया का बुनियादी रोल अब इन्हें पसंद नहीं है. जीवन के हर क्षेत्र को प्रदूषित करने का काम इनके इशारे पर शुरू हो चुका है. कहां मीडिया लोकतंत्र को संतुलित करने वाले एक अंग के रूप में जाना जाता था, अब कोशिश हो रही है कि मीडिया चापलूस की भूमिका निभाए.

एक डर पैदा हो रहा है. तीन खरब वाले इस बाज़ार को चलाने वाले क्या भारतीय संसद को प्रभावित कर ले जाएंगे? दुनिया में जिस तरह माफ़िया संगठन बढ़ रहे हैं और उनका प्रभाव बढ़ रहा है, उससे इस डर का आधार पुख़्ता हो रहा है. देश की न्यायपालिका में भी ऐसे न्यायाधीशों की संख्या बढ़ रही है जो अपने को ख़तरनाक सुनवाई से अलग करते जा रहे हैं. कोई तो दबाव या डर होगा, जो उन्हें ऐसा फ़ैसला लेने पर विवश कर रहा है. सुप्रीम कोर्ट के विवेक पर हम सबको भरोसा है. उन्हें उन सबको मौका देना चाहिए जो इस देश के अच्छे भविष्य में विश्वास रखते हैं. कुछ संस्थाएं ही बची हैं जिन्हें लोग विश्वास की नज़र से देखते हैं. सुप्रीम कोर्ट उनमें से एक है. सुप्रीम कोर्ट चाहे तो राष्ट्रपति को सलाह दे सकता है कि इस क़ानून को हटाने या बदलने का रिफरेंडम कराया जाए. सौ करोड़ से ज़्यादा लोगों का विश्वास मात्र कुछ हज़ार या कुछ लाख लोगों के मानसिक विकार पर क़ुर्बान नहीं किया जा सकता.

संपादक

editor.chauthiduniya@gmail.com

रवि किशोर

समय की ज़रूरत हैं पुलिस सुधार

पिछले कुछ हफ़्तों से भारतीय दंड संहिता की धारा 377 पर दिल्ली उच्च न्यायालय के फ़ैसले पर मामले को बिना जाने-बूझे ज़ोरदार बहस और मीडिया कवरेज हो रही है. हालांकि उच्च न्यायालय के फ़ैसले पर बहस जायज़ है, क्योंकि यह भारतीय संदर्भ में नैतिकता और मूल्यों पर असर डालता है. लेकिन आज उससे भी बड़ा एक मुद्दा है, जिससे समाज के हर वर्ग का सरोकार है और जिस पर बहस ब़ेहद जरूरी है, वह मुद्दा है-पुलिस सुधार.

सरकार को पुलिस सुधार के मुद्दे पर जल्द ध्यान देना चाहिए, इस के लिए उच्चतम न्यायालय के सितंबर 2006 के उस फ़ैसले का संदर्भ लेना चाहिए जो उसने प्रकाश सिंह बनाम भारतीय संघ और अन्य की 1996 में दायर सिविल रिट पिटिशन पर दिया था.

यह थोड़ी राहत की बात है कि यह मुद्दा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के घोषणापत्र में शामिल था. हालांकि यह ध्यान देने वाली बात होगी, कि यूपीए सरकार अपने दूसरे कार्यकाल में इन सुधारों के लिए क्या क़दम उठाती है. 2006 का मॉडल पुलिस बिल काफी दिनों से अटका पड़ा है और अभी तक संसद में पेश नहीं किया गया है. सरकार को सबके हित में इस दिशा में तेज़ी से काम करने की ज़रूरत है.

दुख की बात है कि आज पुलिस ने सभी का विश्वास खो दिया है और आम नागरिक इसे भ्रष्ट, भेदभाव करने वाली, हमेशा ताक़तवरों का साथ देने वाली, सत्ताधारियों के इशारे पर चलने वाली एक ऐसी संस्था के तौर पर देखती है, जिसे आम जनता की सुरक्षा से न कोई मतलब है और न उसकी कोई जवाबदेही ही. स्वतंत्रता से पहले पुलिस अफसर लाट साहबों की तरह रहते थे और उनका काम अपने विदेशी आकाओं का हुक्म बजाना था. स्वतंत्रता के बाद स्थिति बदलनी चाहिए थी लेकिन स्थिति वैसी ही है या यूं कहें और बदतर हो गई है. पुलिस अफसर आज ऐसी ज़िंदगी जी रहे हैं जो ब्रिटिश साहबों को भी शर्मसार कर दे. किसी अधिकारी के घर जाने पर आप वर्दीधारी कांस्टेबलों-जो असल में जुर्म से लड़ते हैं-को साहब के घरेलू कामों में व्यस्त पाएंगे.

हम रोज़ाना पुलिस की अक्षमता, ग़ैर-ज़िम्मेदारी, पक्षपाती रवैए और ड्यूटी के प्रति लापरवाही के बारे में सुनते हैं. निठारी कांड में नोएडा पुलिस द्वारा मज़दूरों के गुमशुदा बच्चों का मामला दर्ज़ करने से मना करना, गुजरात दंगे के समय पुलिस का पक्षपाती रवैया, बाबरी कांड के समय कारसेवकों पर गोली चलाने का आदेश, तेलगी कांड में बड़े पुलिस अधिकारियों का शामिल होना, 84 के दंगों में पुलिस की भूमिका, हाल में ही उत्तराखंड में एक छात्र का फर्जी एनकाउंटर-ये सब पुलिस व्यवहार के कुछ उदाहरण भर हैं.

हिरासती मौतें और पुलिस व्यवहार के ख़िलाफ़ मानवाधिकार आयोग में शिकायतें दिनोदिन बढ़ती जा रही हैं. राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के मुताबिक 2007 में पुलिस हिरासत में 118 मौतें हुईं, 35 पुलिसवालों पर मामले दर्ज़ हुए और किसी को सज़ा नहीं हुई. मानवाधिकार आयोग को सालाना सात लाख के क़रीब शिकायतें आती हैं. ऐसे में किसी को सज़ा न होना हैरानी भरा है.

1996 में प्रकाश सिंह, जो एक पूर्व डीजीपी थे, ने इस मुद्दे को लेकर उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर की. इसमें केंद्र-राज्य सरकारों से पुलिस व्यवस्था में सुधार और पुलिस को बस क़ानून के प्रति जवाबदेह बनाने की मांग की गई थी. उस पर नियंत्रण और नज़र का तरीक़ा ऐसा हो कि वह बिना किसी दबाव के जनता के हित में ही काम करे. इसके कामकाज को इस तरह से पारिभाषित किया जाए कि अगर किसी मामले में पुलिस की लापरवाही (अनजाने में या जानबूझ कर) की वजह से क़ानून की ताक़त ख़त्म होती है तो इसके लिए ज़िम्मेदार अधिकारियों को सज़ा हो सके.

समस्या की गंभीरता और पुलिस में सुधार आने की अनिश्चितता को देखते हुए 2006 में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि वह सरकार के क़दम उठाने का इंतज़ार नहीं कर सकता और उसे ज़रूरी दिशानिर्देश जारी करने ही होंगे. ये दिशानिर्देश सरकार के लिए तब तक बाध्यकारी होंगे, जब तक वह कोई उपयुक्त क़ानून न बना ले. 22 सितंबर 2006 को इस ऐतिहासिक फ़ैसले में केंद्र और राज्य सरकारों को पुलिस सुधार के लिए दिशानिर्देश दिए गए. न्यायालय के दिशानिर्देश दो मुख्य बिंदुओं को लेकर थे- पहला कार्यकाल की तय सीमा, नियुक्ति और तबादले की सही प्रक्रिया और सरकार व पुलिस के बीच एक संस्था बना कर पुलिस को काम करने की स्वतंत्रता- और दूसरा संगठन और व्यक्तिगत स्तरों पर पुलिस की जवाबदेही में वृद्धि.

उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित दिशानिर्देश दिए-

1 राज्य सुरक्षा आयोग- राज्य सरकारों को निर्देश दिए जाते हैं कि वे एक राज्य सुरक्षा आयोग का गठन करें, जो यह सुनिश्चित करे कि राज्य सरकार पुलिस पर ग़ैर-ज़रूरी दबाव नहीं डाल रही हो और ऐसे नीति-निर्देश तय करे जिससे पुलिस क़ानून और संविधान के अनुसार ही काम करे. इस आयोग की अध्यक्षता मुख्यमंत्री या गृहमंत्री करें और राज्य के डीजीपी उसके सदस्य हों. अन्य सदस्य ऐसे चुनें जाएं कि यह संस्था सरकारी नियंत्रण से दूर रहे. साथ ही इस आयोग की सिफ़ारिशें सरकार पर लागू होती हों. यह पुलिस के कामकाज की नीतियां तय करे और उसके मूल्यांकन की रिपोर्ट भी विधानसभा के लिए तैयार करे.

2 राज्य पुलिस महानिदेशक (डीजीपी) का चुनाव व कार्यकाल - राज्य का डीजीपी राज्य सरकार द्वारा विभाग के उन तीन वरिष्ठतम अधिकारियों में से चुना जाना चाहिए, जिन्हें संघ लोक सेवा आयोग द्वारा उनकी सेवा, सेवाकाल और अनुभव के आधार पर उस पद पर नियुक्ति के क़ाबिल समझा जाता हो. एक बार इस पद पर नियुक्ति के बाद उसका कार्यकाल कम से कम दो वर्षों का होना चाहिए. हालांकि राज्य सरकार डीजीपी को राज्य सुरक्षा आयोग से विचार के बाद हटा सकती है, अगर उसे अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन व अपील) के नियमों के तहत या किसी कोर्ट में आपराधिक या भ्रष्टाचार के मामले में दोषी करार दिया गया हो.

3 पुलिस महानिरीक्षकों (आईजी) और अन्य अधिकारियों के कार्यकाल - ऑपरेशनल ड्यूटी पर लगे पुलिस अधिकारियों (आईजी से लेकर थाना प्रभारी तक) का कार्यकाल कम से कम दो सालों का होना चाहिए. उनके कार्यकाल का समय विभागीय या क़ानूनी कार्रवाई में दोषी साबित होने पर या उनकी प्रोन्नति और सेवानिवृत्ति की स्थिति में बदल सकता है.

4 क़ानून-व्यवस्था से जांच को अलग रखना- जांच में लगी पुलिस को क़ानून-व्यवस्था के कामों से दूर रखना चाहिए ताकि जांच में तेज़ी और कुशलता आ सके. हालांकि यह भी सुनिश्चित होना चाहिए कि दोनों भागों में पूरा सहयोग हो. इस विभाजन की शुरुआत दस लाख से अधिक आबादी वाले इलाक़ों से शुरू करके छोटे इलाक़ों तक होनी चाहिए.

5 पुलिस एस्टैब्लिशमेंट बोर्ड - हर राज्य में एक पुलिस एस्टैब्लिशमेंट बोर्ड होना चाहिए जो पुलिस के एसपी या इसके निचले स्तर के अधिकारियों के तबादले, नियुक्ति, प्रोन्नति और अन्य मामलों की देखरेख करे. पुलिस एस्टैब्लिशमेंट बोर्ड एक विभागीय संस्था होनी चाहिए जिसमें डीजीपी और चार अन्य बड़े अधिकारी हों. बिना वजह सरकार बोर्ड के कामकाज में दखल कतई न दे.

6 पुलिस शिकायत प्राधिकरण - जिला और राज्य स्तर पर प्राधिकरण होने चाहिए, जो क्रमशः एसपी या नीचे के स्तर और एसपी से ऊपर के स्तर के अधिकारियों के ख़िलाफ़ आनेवाली शिकायतों की जांच करे. जिला स्तर पर किसी सेवानिवृत्त जिला जज और राज्य स्तर पर सेवानिवृत्त उच्च या उच्चतम न्यायालय के जज को इसका प्रमुख बनाया जाए. इन्हें राज्य सरकार मुख्य न्यायाधीश के अनुशंसित नामों में से चुने.

7 राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग- केंद्र सरकार एक राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग गठित करे और यह आयोग नियुक्ति कमेटी का पैनल तैयार करे जो केंद्रीय पुलिस संगठनों (सीपीओ) के प्रमुखों के चुनाव और नियुक्ति का काम करे. साथ ही यह आयोग समय-समय पर इन संगठनों की क्षमता, इसके स्टाफ की स्थिति, आपसी सहयोग और इनके सही इस्तेमाल जैसी चीज़ों पर ध्यान दे. इस आयोग की अध्यक्षता केंद्रीय गृह मंत्री करें और सभी सीपीओ के प्रमुख और कुछ सुरक्षा विशेषज्ञ इसके सदस्य हों. केंद्रीय गृह सचिव इस आयोग के सचिव हों.

सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि ये दिशानिर्देश 31 दिसंबर 2006 से केंद्र, राज्य और संघीय क्षेत्रों की सरकारें लागू करें, ताकि निर्देशों में दी गई सभी संस्थाएं नए साल से काम करने लगें. सभी सरकारों के कैबिनेट सचिवों को तीन जनवरी तक शपथपत्र दायर करने को कहा गया. लेकिन दुर्भाग्य से ये निर्देश अभी भी अधिकतर राज्यों में लागू नहीं किए गए हैं और राज्यों ने इनकी कुछ बातों पर विरोध भी जताया है. केंद्र सरकार द्वारा दायर समीक्षा याचिका अभी भी लंबित है. अब तक अरुणाचल, मेघालय, मिज़ोरम और नगालैंड जैसे कुछ राज्यों ने ही इन निर्देशों का पालन किया है.

इस बीच पुलिस अभी भी मॉडल पुलिस एक्ट 2006 का इंतज़ार कर रही है. इसे अक्टूबर 2006 में ही गृह मंत्रालय के पास भेजा गया था. यह एक्ट 1861 के औपनिवेशिक क़ानून पुलिस एक्ट की जगह लेगा.

वक़्त का तकाजा है कि पुलिस अपने कामकाज के दौरान जनता से सहयोग, सांत्वना और मित्रता का व्यवहार करे. अगर पुलिस सुधारों का मक़सद केवल पुलिस की क़ाबिलियत और क्षमता बढ़ाना होगा तो उससे पुलिस और जनता साथ-साथ नहीं आ पाएगी. पुलिस को निष्पक्ष, गरिमामय और अपने सर्वश्रेष्ठ देने को तैयार रहना चाहिए.

अंत में पूर्व राष्ट्रपति कलाम के शब्दों में - पुलिस को पेशेवर तरीक़ा अपनाने और कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए. नई तकनीकों का इस्तेमाल करने के साथ-साथ उसे अनुशासन और व्यवहार का एक आदर्श भी प्रस्तुत करना चाहिए.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

प्रिय संपादक जी,

26 जुलाई के अंक में *पंजाब में आत्महत्या की खेती* वाले आलेख ने काफी हैरत में डाल दिया है. अभी तक तो यही माना जाता रहा है कि पंजाब देश के सर्वाधिक समृद्ध राज्यों में से एक है. लेकिन इस रिपोर्ट को पढ़ने के बाद तो पंजाब में कृषि की दूसरी और डरावनी तस्वीर सामने आई. आशा है कि **चौथी दुनिया** ने जो असली तस्वीर दिखाई है, उससे सरकार की आंखें खुल जाएंगी. कितनी अजीब बात है कि क़र्ज़ के बोझ तले दबे किसान पंजाब में न सिर्फ़ हैं, बल्कि आत्महत्या करने के लिए भी मजबूर भी हैं. इस आलेख के मद्देनज़र एक ही बात कहना चाहूंगी कि सरकार को क़र्ज़ माफ़ी योजना की मूल अवधारणा और अमल पर नए सिरे से विचार अवश्य करना चाहिए.

एक बात और. संपादकीय-**तोप मुक़ाबिल**-में समलैंगिकता पर कुछ वाज़िब सवाल उठाए गए हैं. यह बिल्कुल सही है कि अगर समय रहते इस मसले को निपटाया नहीं गया तो यह आगे जाकर बहुत भारी पड़ने वाला है. संसद, सरकार और सर्वोच्च न्यायालय को इस मामले में हस्तक्षेप शीघ्र करना चाहिए.

आपकी
पिंकी
दिल्ली

प्रिय संपादक जी,

पिछले अंक (26 जुलाई) की आवरण कथा बहुत व्यापक विषयों को समेटे हुए लगी. समलैंगिकता पर दिल्ली हाईकोर्ट ने जो व्यवस्था दी है, उसके सभी पहलुओं पर अवश्य ही विचार किया जाना चाहिए. नए विचारों को मान्यता मिलनी ही चाहिए, लेकिन तभी जब वह भारतीय संस्कृति के साथ मिल कर चले. इस आवरण कथा से इस मुद्दे को समझना बहुत आसान रहा, जिसके लिए धन्यवाद. ऐसे ही सामाजिक मुद्दों को आगे भी उठाते रहिए.

आपका
रोबी
जगतपुरी

लिबरहान आयोग : संसद तक पहुंचने में और कितना वक़्त लगेगा

डॉ. मंज़ूर आलम

जब से हमारा देश एक गणतंत्र बना है, तब से ही विभिन्न सरकारों ने एक आसान और अब तो एक हद तक सुपरिचित हो चुका तरीक़ा खोज लिया है. वह तरीक़ा कठिन हालातों, जैसे मुस्लिम-विरोधी दंगे या वित्तीय घोटालों को, और उलझाने का है.

मामलों को देखने के लिए- जांच के लिए सरकारी शब्दावली में यही शब्द है- आयोगों का गठन करना सरकार की एक सोची-समझी चाल होती थी, और यह अब भी बदस्तूर जारी है. इन आयोगों द्वारा की गई विस्तृत और ख़र्चीली कवायदों के बावजूद भी कभी कोई ठोस नतीजा नहीं निकला है. ऐसे में यह आशंका बेमानी नहीं है कि बाबरी मस्जिद विध्वंस की जांच के लिए बनाए गए लिबरहान आयोग की रिपोर्ट का हाल भी ऐसा ही होगा.

हमें याद रखना चाहिए कि चार सौ साल पुरानी सारसेनिक वास्तुकला के एक दुर्लभ उदाहरण का नष्ट किया जाना केवल मुस्लिमों के लिए चिंता का सबब नहीं है. यह घटना उन सभी भारतवासियों से जुड़ी है, जो अपनी सांस्कृतिक और वास्तुकला की धरोहरों को सुरक्षित रखना चाहते हैं. ग़ौरतलब है कि बाबरी मस्जिद को संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने विश्व धरोहर स्थल के रूप में घोषित किया था.

हमें याद रखना चाहिए कि चार सौ साल पुरानी सारसेनिक वास्तुकला के एक दुर्लभ उदाहरण का नष्ट किया जाना केवल मुस्लिमों के लिए चिंता का सबब नहीं है. यह घटना उन सभी भारतवासियों से जुड़ी है, जो अपनी सांस्कृतिक और वास्तुकला की धरोहरों को सुरक्षित रखना चाहते हैं. ग़ौरतलब है कि बाबरी मस्जिद को संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने विश्व धरोहर स्थल के रूप में घोषित किया था.

6 दिसंबर 1992 को एक धर्मांध और उन्मादी भीड़ ने बाबरी मस्जिद को गिरा दिया. इस जघन्य काम को अंजाम देने वाली भीड़ का नेतृत्व कर रहे भाजपा, विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल- ये सारे ऐसे संगठन थे जिनसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा संचालित संघ परिवार बनता है. इनके बड़े नेताओं और समर्थकों ने ही भीड़ को उकसाया और उसका नेतृत्व किया. तत्कालीन प्रधानमंत्री पी.वी.नरसिंह राव और उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने क्रमशः अपनी असक्रियता और परोक्ष सहयोग से इस आपराधिक घटना को अंजाम तक पहुंचने में मदद ही की.

इस बात की पूरी संभावना है कि लिबरहान आयोग ने अपनी रिपोर्ट में इन दो लोगों को दोषी ठहराया हो, जिन्होंने भारत के संविधान को छलने का काम किया और मस्जिद को सुरक्षा प्रदान करने के अपने संवैधानिक कर्तव्य को निभाने में चूक की. हालांकि पूर्व प्रधानमंत्री राव न्याय के कठघरे में आने से पहले ही इस दुनिया से चल बसे.

आशा है कि संघ के शूरवीर नेता जैसे लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, अशोक सिंघल और संघ के दूसरी पांत के नेता जैसे विनय कटियार और उमा भारती को भी रिपोर्ट में दोषी बताया गया हो. उमा भारती ने तो पहले ही इस आपराधिक कांड में अपनी संलिप्तता को स्वीकार कर लिया है. कल्याण सिंह ने रिकार्ड पर बड़े गर्व से इसे क़बूला है. इसके अलावा दूसरे भी पूरे विश्वास से बाबरी मस्जिद के विध्वंस में निभाई गई अपनी भूमिका से इंकार नहीं कर सकते.

यह रिपोर्ट लिबरहान आयोग के दिसंबर 1992 में गठन के 16 वर्ष बाद आई है. इस पर सरकारी राजकोष के आठ करोड़ रुपये ख़र्च हुए और 48 बार इस आयोग के कार्यकाल का विस्तार हुआ है, लेकिन यह आशंका भी है कि कहीं इसका नाम भी श्रीकृष्ण आयोग और जैन आयोग की तरह ख़र्चीले लेकिन बेमतलब के आयोगों की फेरहिस्त में तो नहीं जुड़ जाएगा. केंद्र सरकार यह अवश्य सुनिश्चित करे कि इतनी बड़ी मात्रा में लोगों का जो पैसा ख़र्च हुआ है, वह किसी बेकार के तमाशे पर बर्बाद नहीं हुआ.

दोनों बड़े राजनैतिक दलों-कांग्रेस और बीजेपी-के लिए भी एक सलाह है कि वे लिबरहान आयोग की जांच का उपयोग एक-दूसरे को नुक़सान पहुंचाने के लिए हथियार के तौर पर न करें. जस्टिस बी एम श्रीकृष्ण ने हाल के अपने एक लेख में लिखा था कि जांच आयोगों का गठन किसी घटना के पीछे के सच का पता लगाने के लिए होता है और यह सुनिश्चित करने के लिए जिससे ऐसी घटना दोहराई न जाए.

आयोग की जांच समय जुटाने, छलने या धोखा देने के लिए नहीं होती, जिससे दूसरी घटने से लोगों का गुस्सा धीरे-धीरे शांत हो जाए और रिपोर्ट दर्ज़ होने से पहले तक उसकी यादें धुंधली हो जाएं और उसे आसानी से रद्दी में डाला जा सके. यह फिर से श्रीकृष्ण आयोग के जैसा होगा. यह बात भारतीय अपने अनुभव से जानते हैं.

यह कह सकते हैं कि इस केंद्रीय सरकार की नीयत कम से कम अच्छी तो है ही, जो नरसिंह सरकार से अलग है. आशा करते हैं कि वह रिपोर्ट को दबा कर नहीं बैठेगी. जैसे कई कांग्रेस-नेतृत्व वाली सरकारें श्रीकृष्ण आयोग की रिपोर्ट को दबा कर बैठ गईं. आशा करते हैं कि कार्रवाई की रिपोर्ट के साथ ही इसे संसद में पेश किया जाएगा, ताकि लोग जान पाएं कि अब तक क्या कार्रवाई हुई है. यह राष्ट्र की अखंडता और संविधान की सर्वोच्चता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है. लोगों को यह भरोसा होना चाहिए कि यहां क़ानून राज्य के पास है, किसी उन्मादी भीड़ के पास नहीं. यह देश यहां के क़ानून के अनुसार ही चलना चाहिए न कि कुछ क़ानून तोड़ने वाले और संविधान को नुक़सान पहुंचाने वालों की ज़िद और मर्ज़ी के मुताबिक .

(लेखक इंस्टीट्यूट ऑफ ऑबजेक्टिव स्टडीज (आईओएस), नई दिल्ली के अध्यक्ष हैं.)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

ख़ुफ़िया एजेंसियों के सीक्रेट

जिस के संगीत से डरती थी एफबीआई

एफबीआई यानी दुनिया की सबसे ताक़तवर जांच एजेंसी. दुनियाभर के अपराधी इससे ख़ौफ खाते हैं. यह राजनीतिक उलटफेरों और जीत-हार के खेल में माहिर है. हालांकि एक ऐसा वक़्त भी था, जब एफबीआई को एक शख्स के संगीत से डर लगने लगा था. इतना कि वह उसकी हर हरकत पर नज़र रखने लगी. आख़िर कौन था वह शख्स और क्यों डरती थी उससे एफबीआई?

पावस नीर

तारीख़- 10 जनवरी, 1971 जगह- मिशिगन, अमेरिका. मौका था एक विशाल रैली का. एक सामाजिक कार्यकर्ता जॉन सिनक्लेयर की गिरफ़्तारी के विरोध में आयोजित इस रैली में कई बड़े नाम शामिल होने वाले थे. ड्रग ले जाने के आरोप में पकड़े गए जॉन सिनक्लेयर दरअसल एक जाने-माने उदारवादी कार्यकर्ता थे और कहा जा रहा था कि उन्हें ग़लत आरोप लगा कर गिरफ़्तार किया गया. संगीत, राजनीति और सामाजिक अधिकारों से जुड़ी कई बड़ी हस्तियां इस रैली में मौजूद थीं.

हालांकि यह रैली केवल जॉन सिनक्लेयर या इसमें भाग लेने वालों के लिए ही अहम नहीं थी. इस रैली की हर गतिविधि पर नज़रें गड़ाई हुए थी अमेरिकी संघीय जांच एजेंसी यानी एफबीआई. रैली में आए हर शख्स पर नज़र रखी जा रही थी, लेकिन इन सारे मेहमानों में भी एक ख़ास व्यक्ति था. इतना ख़ास कि उस पर नज़र रखने के लिए स्पेशल एजेंट लगाया गया था. रैली ख़त्म होने पर इस ख़ास टारगेट पर नज़र रख रहे स्पेशल एजेंट ने अपनी रिपोर्ट दायर की. उसमें कहा गया था कि अपनी पत्नी के साथ रैली में आए इस शख्स ने कई गीत गाए, इसका आख़िरी गाना *जॉन सिन्क्लेयर* ख़ास इसी मौके के लिए लिखा गया था. रिपोर्ट में इस शख्स को विषय (सब्जेक्ट) कहा गया था. इसी रिपोर्ट में इस विषय की पहचान दी गई थी- जॉन लेनन, जो पहले बीटल्स नाम के एक ग्रुप के साथ जुड़ा रहा.

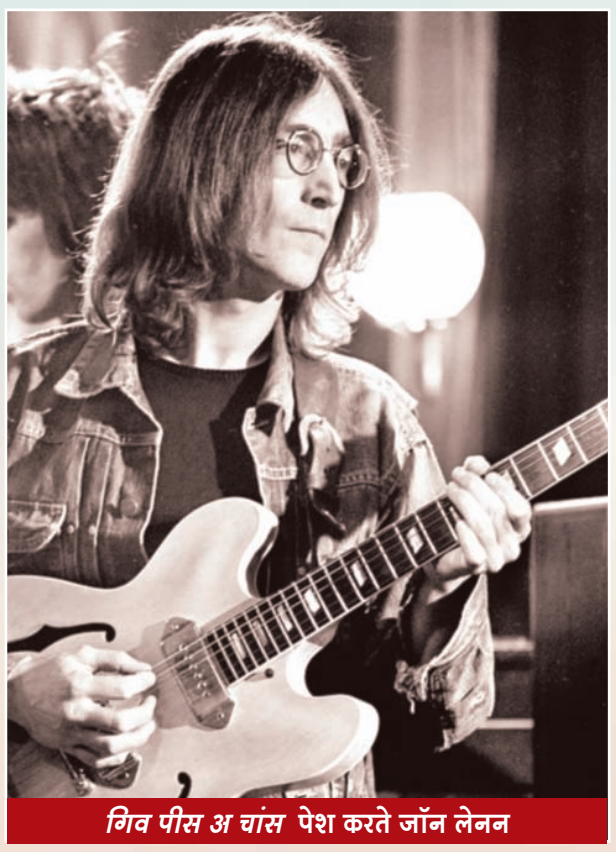

गिव पीस अ चांस पेश करते जॉन लेनन

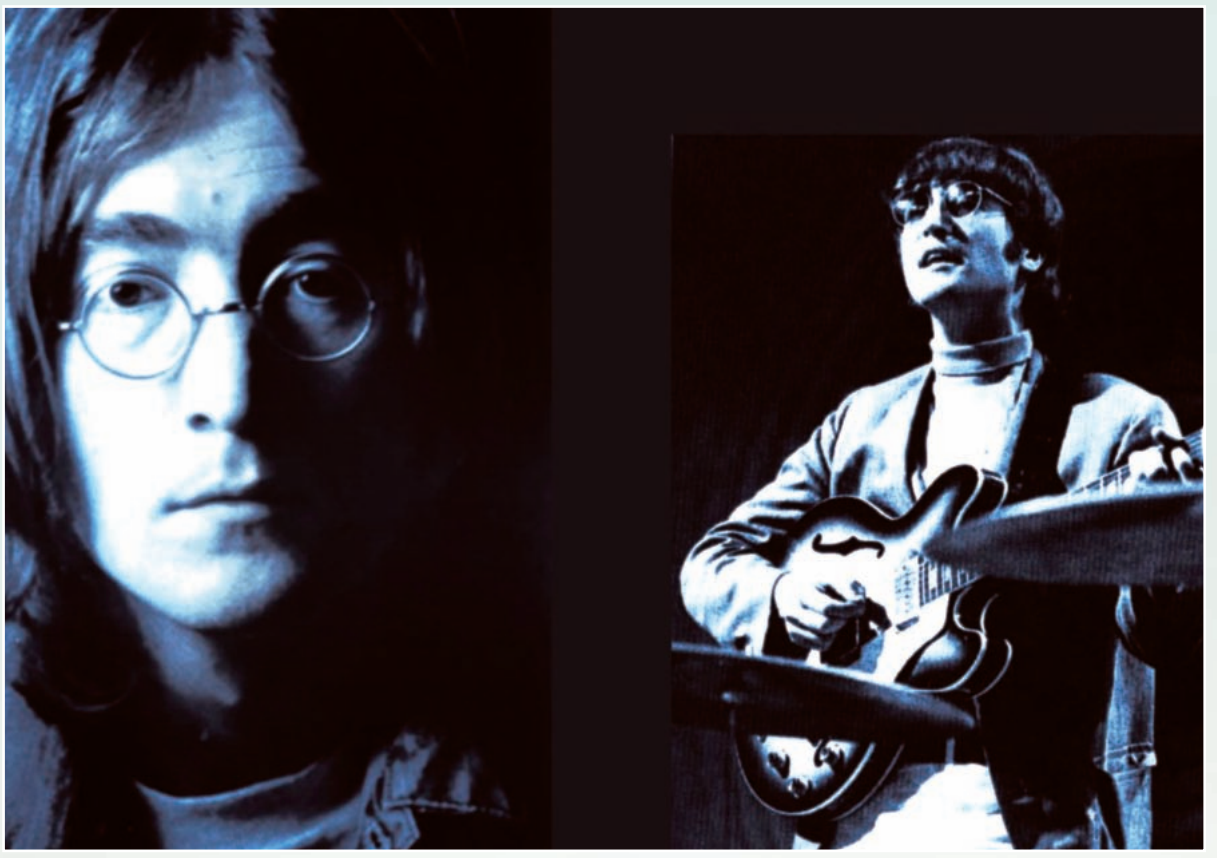

जॉन लेनन का यह परिचय किसी आम आदमी के सामने रखा जाता तो शायद उसकी हंसी छूट जाती. इतिहास के सबसे ख्यात संगीतकारों में एक जॉन लेनन की पहचान महज़ गाना गाने वाले एक ऐसे विषय के तौर पर की गई थी जो किसी बीटल्स नाम के ग्रुप से जुड़ा था. जॉन लेनन और बीटल्स विश्व इतिहास संगीत के ऐसे नाम थे जिनका परिचय देने की ज़रूरत ही नहीं थी. हां, इतना बताना ज़रूरी था कि उस रैली के तीन दिन बाद ही सिनक्लेयर रिहा हो गए. सवाल यह है कि आख़िर इतने प्रसिद्ध संगीतकार और गायक के ऊपर क्यों नज़र रखी जा रही थी? क्यों एफबीआई की नज़रों में सबसे ख़तरनाक थे-जॉन लेनन?

दरअसल जॉन लेनन की लोकप्रियता ही उन पर नज़र रखे जाने की वजह थी. जॉन का संगीत पूरी दुनिया में सुना जाता था और इसी वजह से एफबीआई को उनसे डर लगता था.

दरअसल वह वक़्त अमेरिकी राजनीति में बहुत अहम था. वियतनाम के साथ युद्ध ज़ोर पकड़ चुका था और उसी के साथ युद्ध का विरोध करने वालों की संख्या भी बढ़ गई थी. राष्ट्रपति जॉनसन द्वारा शुरू किए गए युद्ध को नए राष्ट्रपति निक्सन ने भी जारी रखा था. अमेरिकी सैनिकों की भारी संख्या में मौत की ख़बरों के बीच उदारवादियों और समाजवादियों द्वारा विरोध भी बढ़ता जा रहा था. एफबीआई की सबसे ऊंची कुर्सी पर एडगर जे हूवर 40 से भी अधिक सालों से क़ाबिज़ थे. अमेरिका में पूंजीवाद का दबदबा था. उसे सबसे अधिक ख़तरा था-कम्यूनिज़्म से. जहां वियतनाम में भी इसी कम्यूनिज़्म से उसका मुक़ाबला चल रहा था, वहीं देश के अंदर भी पूंजीवाद और हिंसा के ख़िलाफ़ माहौल तैयार हो रहा था. हूवर को लगता था कि यह कम्यूनिज़्म को जन्म देगा और उसने इस नव-कम्यूनिज़्म से निपटने की तैयारी शुरू कर दी थी. ऐसे हर शख्स पर नज़र रखी जा रही थी जिस पर ज़रा सा भी शक़ हो. युद्ध के ख़िलाफ़ और उदारवाद के समर्थन में बोलने वाला हर आदमी इस घेरे में आ जाता था. तब के अधिकतर कलाकार और संगीतकार युद्ध का विरोध कर रहे थे.

जॉन लेनन ने भी दो साल पहले युद्ध के ख़िलाफ़ एक गीत रिकार्ड किया था. यह गीत दूसरे वियतनाम मेमोरियल के दौरान लाखों लोगों ने गाया था. उनके गीत युद्ध विरोधी संघर्ष के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा थे. सरकार और एफबीआई को लगा कि जॉन लेनन उनके लिए ख़तरनाक साबित हो सकते हैं. दरअसल निक्सन को लगता था कि लेनन द्वारा उनका विरोध और उनके विरोधी मैकगवर्न का समर्थन उनके दोबारा जीतने में रोड़ा बन सकता है. तभी से उन पर नज़र रखी जाने लगी. ऐसी बातें ढूंढी जाने लगीं जिससे उनपर सवाल खड़े किए जा सके. उन्हें फंसाया जा सके.

सिनक्लेयर की रैली तो बस एक उदाहरण थी. उनकी ज़िंदगी की हर एक बात पर नज़र रखी जा रही थी. आख़िरकार एफबीआई को मौका मिला. 1968 में लेनन मादक पदार्थ कैनाबिस के साथ पकड़े गए. अब निक्सन को सुझाया गया कि लेनन को देश से निकाला जा सकता है. दरअसल लेनन ब्रिटिश थे और उन्हें क़ानून तोड़ने के नाम पर बाहर किया जा सकता था. लेनन को बाहर निकालने के लिए कोशिशें शुरू हो गईं.

23 मार्च 1973 को उन्हें 60 दिन के भीतर देश छोड़ने को कह दिया, हालांकि उनकी पत्नी को रियायत मिल गई. इसके जवाब में लेनन ने एक नए देश न्यूटोपिया की स्थापना का दावा किया, जिसकी न तो कोई सीमा थी, न तो कोई क़ानून. ख़ुद को न्यूटोपिया का नागरिक बता उसका झंडा (दो सफेद रुमाल) लहराते हुए, उन्होंने अमेरिका से राजनीतिक शरण की मांग कर दी. हालांकि इस बीच निक्सन ख़ुद वाटरगेट कांड में फंस चुके थे और हूवर का निधन हो चुका था. 1975 में लेनन का देश निकाला ख़ारिज़ कर दिया गया.

लेनन की मौत के बाद उनकी बायोग्राफी लिखने वाले इतिहासकार जो सायनर ने सूचना के अधिकार के तहत एफबीआई से जॉन लेनन से जुड़ीं फाइलें मांगी. एफबीआई ने यह तो मान लिया कि उसके पास लेनन से जुड़ी 281 पन्नों की एक फाइल है, लेकिन उसने इसे सामने लाने से इस बिना पर इंकार कर दिया कि उसमें सुरक्षा से जुड़ीं कुछ बातें हैं. हालांकि बाद में एक लंबी क़ानूनी लड़ाई और बिल क्लिंटन के समय क़ानून बदलने से फाइलें आख़िरकार सामने आईं. इन फाइलों के आधार पर जो सायनर ने एक किताब-गिम्मी सम ट्रूथ:द जॉन लेनन एफबीआई फाइल्स-लिखी. फाइलों को पढ़ने से यह साफ हो गया कि दुनिया की सबसे शक्तिशाली सरकार और उसकी ताक़तवर जांच एजेंसी-एफबीआई इंग्लैंड के लीवरपूल में जन्मे एक शख्स जो किसी बीटल्स नाम के ग्रुप से जुड़ा हुआ था, से किस तरह डरती थी और किस तरह जॉन लेनन पर हर वक़्त से नज़र रखी गई थी.

pawas.chauthiduniya@gmail.com

ज़रा हट के

अंतरिक्ष में रेलमपेल

अंतरिक्ष में भीड़ लगी है. भीड़ कोई सैकड़ों-हज़ारों की नहीं, बस 13 की है. लेकिन अंतरिक्ष के लिए यह भीड़ भी कम नहीं है. नासा का अंतरिक्ष यान एंडेवर अंतरराष्ट्रीय स्पेस स्टेशन पर उतर गया है. एंडेवर वहां 11 दिन रहेगा. उसके साथ सात अंतरिक्ष यात्रियों का दल गया है. स्पेस स्टेशन पर पहले से छह अंतरिक्ष यात्री मौजूद हैं. इस तरह यह एक रिकॉर्ड बन गया है कि एक साथ 13 अंतरिक्ष यात्री इस समय स्पेस स्टेशन पर मौजूद हैं. यह भी एक रिकॉर्ड है कि पहली बार स्टेशन के निर्माण से जुड़े पांच भागीदार देशों के प्रतिनिधि एक साथ जमा हैं. यह स्टेशन अमेरिका, रूस, यूरोप, जापान और कनाडा की साझा पहल से तैयार किया गया था. एंडेवर की इस ऐतिहासिक यात्रा में एक महत्वपूर्ण काम स्टेशन पर स्थापित जापानी रिसर्च लैब के एक आख़िरी उपकरण को ले जाने का था. यह उपकरण एक प्लेटफॉर्म की तरह का है, जिसका इस्तेमाल स्टेशन के पोर्च की तरह होगा. इससे स्टेशन के बाहर भी साजोसामान रखा जा सकेगा. साथ ही इसकी मदद से स्टेशन से बाहर निकलकर खुले अंतरिक्ष में भी वैज्ञानिक प्रयोग किए जा सकेंगे. इसके अलावा एंडेवर के अंतरिक्ष यात्री अपने अभियान में जापानी लैब पर काम निपटाने के अलावा स्टेशन के सौर ऊर्जा सिस्टम की बैटरियां भी बदलेंगे. कुल मिलाकर वे पांच बार स्टेशन

के इर्द-गिर्द चक्कर लगाएंगे.

हालांकि एंडेवर के उड़ान की शुरुआत में ही गड़बड़ हुई थी, कैनेडी स्पेस सेंटर पर नासा के वैज्ञानिकों ने इसकी जांच शुरू कर दी है कि आख़िर उड़ान के दौरान एंडेवर के ईंधन टैंक पर लगा इंसुलेटिंग फोम कैसे छिटक गया. यह सवाल इसलिए भी चिंता का कारण है कि कुछ-कुछ इन्हीं वजहों से 2003 में अंतरिक्ष यान कोलंबिया दुर्घटनाग्रस्त हो गया था. अंतरिक्ष में जाने की अगली बारी स्पेस शटल डिस्कवरी की है. उसे 18 अगस्त को छोड़ा जाएगा.

नहीं रहा अमेरिका का सबसे विश्वासी व्यक्ति

यह ऐसा ही है (दैट्स द वे इट इज़). अमेरिकी टीवी न्यूज़ इतिहास की यह सबसे प्रसिद्ध पंक्ति अब सुनाई नहीं देगी. प्रसिद्ध अमेरिकी न्यूज़ एंकर वाल्टर क्रोनकाइट का हाल में ही निधन हो गया. क्रोनकाइट अपने न्यूज़ शो का अंत इसी वाक्य से करते थे. वाल्टर क्रोनकाइट का नाम टेलीविज़न ब्राडकास्टिंग के क्षेत्र में कितना बड़ा था, उसे इस बात से समझा जा सकता है कि उन्हें अमेरिका का सबसे विश्वासी व्यक्ति (द मोस्ट ट्रस्टेड मैन इन अमेरिका) कहा जाता रहा.

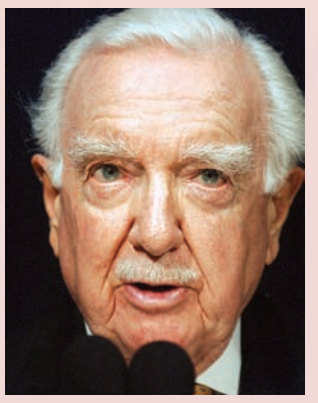

अमेरिका के सीबीएस न्यूज़ नेटवर्क के एंकर के तौर पर वह उस दौर के गवाह रहे जिसमें अमेरिका और दुनिया भर में कई बड़े बदलाव हुए. एंकर के तौर पर उन्होंने जॉन एफ कैनेडी और मार्टिन लूथर किंग जूनियर की हत्याओं के साथ-साथ चांद पर आदमी के पहले क़दम तक की ख़बरें दर्शकों तक पहुंचाई.

जॉन एफ कैनेडी की हत्या की ख़बर के समय उनका भावनात्मक प्रसारण आज भी टीवी न्यूज़ इतिहास के सबसे जाने-माने दृश्यों में है. क्रोनकाइट तथ्यों के अलावा विचार नहीं देने में यक़ीन करने वाले पत्रकारों में थे, उनका मानना था कि तथ्य सबसे पवित्र हैं और विचार देना पत्रकारों का काम नहीं है. पूरे जीवन के दौरान वह केवल एक बार इस विचारधारा से दूर हुए. वियतनाम युद्ध के समय रिपोर्टिंग कर रहे वाल्टर क्रोनकाइट को एक बार मृत सैनिकों से भरे हेलीकॉप्टर में वापस आना पड़ा था. इस घटना के बाद क्रोनकाइट ने अपने कार्यक्रम में वियतनाम युद्ध के औचित्य और क़ीमत पर सवाल उठाए. उनके इस प्रसारण पर ही तत्कालीन राष्ट्रपति जॉनसन ने कहा था कि अगर मैंने क्रोनकाइट को खो दिया है तो समझो मैंने अमेरिका को खो दिया.

साफ है, अमेरिकी जनमानस पर क्रोनकाइट का बहुत गहरा प्रभाव था. अपने दोस्ताना रवैए और जनता से जुड़े मुद्दे उठाने की आदत की वजह से ही जनता ने उन्हें अंकल वाल्टर का नाम दिया था. मृत्यु के समय क्रोनकाइट की उम्र 92 वर्ष थी. क्रोनकाइट के साथ ही अमेरिका और पूरी दुनिया के टीवी न्यूज़ प्रसारण में एक युग का अंत हो गया है.

अल क़ायदा लीडरों को मारने का प्लान बनाया था सीआईए ने

सीआईए निदेशक लियोन पनेटा

जार्ज बुश और उनके प्रशासनिक अमले को सत्ता से गए हुए क़रीब आधा साल गुज़र चुका है लेकिन उनके कारनामे अभी भी सुर्ख़ियां बटोर रहे हैं. ताज़ा विवाद उठ खड़ा हुआ है अमेरिकी ख़ुफ़िया संगठन सीआईए के प्रमुख लियोन पनेटा के एक ख़ुलासे से. इस ख़ुलासे में उन्होंने बताया है कि बुश प्रशासन के समय सीआईए ने अल क़ायदा और तालिबान के बड़े लीडरों की हत्या की योजना बनाई थी. यह योजना म्यूनिख ओलंपिक के बाद चलाए गए इज़रायली कार्यक्रम की तर्ज़ पर बनाई गई थी. 1972 में म्यूनिख ओलंपिक के दौरान कई इज़रायली खिलाड़ियों की हत्या के बाद इज़राइली ख़ुफ़िया एजेंसी ने एक टीम तैयार की थी. इस टीम का मक़सद था फिलीस्तीनी आतंकवादियों की पहचान कर उनकी हत्या करना. ठीक इसी तरीक़े पर चलते हुए अमेरिका में भी 9/11 के बाद एक टीम तैयार करने की योजना बनी थी. अधिकारी चाहते थे कि सिविलियन मौतों को कम करते हुए अल क़ायदा को ख़त्म करने का एक नया रास्ता बनाया जाए. इसके लिए प्रशिक्षित हत्यारों की एक फौज तैयार की जाती. हालांकि इस योजना को स्वीकृति नहीं मिल पाई और इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया गया.

इस ख़ुलासे के बाद अमेरिकी संसद में हंगामा मच गया है. डेमोक्रेट सदस्यों ने इस मामले को लेकर सीआईए और पूर्व अमेरिकी उप-राष्ट्रपति डिक चेनी की भूमिका की जांच की मांग की है. अब सीनेट की एक हाउस कमेटी को इस मामले की जांच सौंप दी गई है.

हाल के दिनों में सीआईए की भूमिका पर भी सवाल खड़े होते रहे हैं. सीआईए को हाल में ही कांग्रेस को गुमराह करने के मामले में फजीहत झेलनी पड़ी थी, माना जा रहा है कि सीआईए प्रमुख लियोन पनेटा ने ही 2001 में इस कार्यक्रम को ख़त्म कर दिया था. हालांकि उन्होंने इसकी और इस पूरे कार्यक्रम के बारे में कोई भी सूचना संसद को नहीं दी. वैसे उनका तर्क है कि क्योंकि इस योजना को लागू ही नहीं किया गया तो फिर इसकी सूचना देने की कोई ज़रूरत भी नहीं थी. ख़ैर, इस मामले पर फ़ैसला अब हाउस कमिटी करेगी.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

हिलेरी हौले-हौले कर गईं गंभीर बात

राहुल मिश्र

अमेरिका शीतयुद्ध के ख़त्म होने और सोवियत संघ के विघटन के बाद ही एक मात्र महाशक्ति बन गया था. फिर भी दक्षिण एशिया में भारत के साथ उसके संबंध काफी दिनों तक ठंडे ही रहे. वजह ज़ाहिर तौर पर भारत के पूर्व सोवियत संघ से रिश्ते थे. यह ठंडापन तब तक बरकरार रहा, जब तक बुश प्रशासन और अमेरिकी कांग्रेस ने नई पहलक़दमी न की. भारत पर लगे अछूतपन का दाग़ हटाया और उसे न्यूक्लियर क्लब में जगह दी. आज भारत अपने नागरिक परमाणु कार्यक्रम के लिए नाभिकीय ईंधन और तकनीक की ख़रीद-फ़रोख्त कर सकता है. इसके साथ ही शुरुआत हुई भारत और अमेरिका के बीच दोस्ती और गर्मजोशी से भरे रिश्ते की. इसे रणनीतिक भागीदारी की संज्ञा दी गई. बराक हुसैन ओबामा के नेतृत्व वाली डेमोक्रैटिक पार्टी की अमेरिकी सरकार ने इस उभरते रिश्ते पर शुरू से ही रज़ामंदी जताई. इसलिए अमेरिकी विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन के पहले भारत दौरे पर देशभर की निगाहें टिकी रहीं. क्लिंटन अमेरिका से क्या सौगात लेकर आईं और भारत से क्या उम्मीद कर गईं, यह तो दीगर बात है. इतना तय है कि उनका दौरा और इस दौरान उभरा मसौदा भारत-अमेरिका के रिश्ते को क्या दिशा देगा, इस पर न केवल भारत, बल्कि दुनिया भर की निगाहें टिकी रहीं.

हिलेरी क्लिंटन के पांच दिनी इस दौरे में सबसे अहम बात यह रही कि यह दौरा आधिकारिक कम और व्यक्तिगत ज़्यादा लगा. फ़ैसले कम और संदेश ज़्यादा दिए गए. यह किसी अमेरिकी उच्चस्तरीय अधिकारी का पहला दौरा था जिसकी पृष्ठभूमि में पाकिस्तान नहीं था. यह भी पहली बार हुआ जब कोई अमेरिकी हाई-प्रोफाइल मंत्री आया और यहां से पाकिस्तान नहीं गया. ग़ौरतलब है कि हिलेरी क्लिंटन का यह भारत दौरा ऐसे समय में हो रहा है जब भारत और पाकिस्तान के रिश्तों में खटास बनी हुई है. साथ ही हिलेरी की कोशिश अमेरिका के साथ द्विपक्षीय संबंधों को मज़बूती देने और उन्हें आगे बढ़ाने की थी. लिहाज़ा क्लाइमेट चेंज के मुद्दे पर पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश की दो-टूक बात और बेबाक़ लहजा भी अमेरिका को नागवार नहीं गुज़रा. 26-11 को हुए मुंबई हमलों ने सीमा पार से आतंक की जो तस्वीर दुनिया के सामने रखी, वह अमेरिका के लिए अहम रहा और हिलेरी क्लिंटन ने मुंबई में आतंकी हमलों का शिकार हुए होटल ताज में ठहरने का फ़ैसला किया और उन तमाम लोगों को श्रद्धांजलि दी, जो इन हमलों में मारे गए. हिलेरी क्लिंटन का पांच दिवसीय भारत दौरा दिल्ली आकर ख़त्म हुआ, जब वह आख़िरी दिन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, विदेश मंत्री एस एम कृष्णा, कांग्रेस अध्यक्षा सोनिया गांधी और विपक्षी पार्टी के नेता लालकृष्ण आडवाणी से मिलीं. आधिकारिक तौर पर इन मुलाक़ातों में जो फ़ैसले हुए उससे एक चीज़ साफ हुई कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को नवंबर में अमेरिका के पहले स्टेट गेस्ट बनने का निमंत्रण दिया गया. यह दौरा ख़ास तौर पर मनमोहन सिंह और बराक ओबामा की नवंबर में मुलाकात के पहले एजेंडा तय करने के लिए खाका तैयार करने के लिए किया गया. भारत और अमेरिका के बीच पनप रहे नए रिश्ते के लिए अहम समझे जा रहे मुद्दों पर अमेरिकी सरकार ने भी फ़िलहाल अपना अंतिम निर्णय नहीं लिया है, लेकिन वह चाहती है कि इससे पहले कि मनमोहन सिंह वाशिंगटन में ओबामा से मुलाक़ात करें, उन तमाम मुद्दों पर आम सहमति आधिकारिक स्तर पर बनाई जा सके. इन मुद्दों में ख़ासतौर पर परमाणु अप्रसार और जलवायु परिवर्तन जैसे विषय हैं. इसके अलावा यह भी कोशिश होगी कि नई विश्व व्यापार संधि पर भारत और अमेरिका किसी टकराव की स्थिति से बच सकें. फ़िलहाल इन तीनों ही मुद्दों पर अमेरिकी रुख़ पर भारत को आपत्ति है. भारत ने परमाणु अप्रसार संधि पर दस्तखत करने से इंकार कर दिया है. भारत का कहना है कि यह संधि भेदभावपूर्ण है, क्योंकि इससे परमाणु संपन्न देशों पर निःशस्त्रीकरण का दबाव नहीं बनता. जलवायु परिवर्तन पर अपना एतराज़ भले ही कड़े शब्दों में जयराम रमेश ने हिलेरी क्लिंटन के सामने जता दिया हो, लेकिन अमेरिका का अभी यही मानना है कि यदि आने वाले दिनों में भारत अंतरराष्ट्रीय जगत में अपनी अहम भूमिका का दावा करता है तो उसे दायित्व की एक क़ीमत चुकानी पड़ेगी. अमेरिका का मानना है कि वैश्विक प्रदूषण की रोकथाम में भारत को बड़ा फ़ैसला लेने की ज़रूरत है और उन्हीं फ़ैसलों पर यह निर्भर करेगा कि आने वाले दिनों में भारत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर क्या किरदार अदा करेगा.

फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

भारत, पाकिस्तान और अमेरिका के बीच परिस्थितियां बदल चुकी हैं. आज अंतरराष्ट्रीय जगत में ये तीनों खिलाड़ी एक ही पाले में खेल रहे हैं. यक़ीनन, अमेरिका की बिग ब्रदर की भूमिका बरकरार है और भारत और पाकिस्तान शह और मात का खेल अमेरिकी रेफरी के सामने ही खेलेंगे. हिलेरी के सामने सबसे अहम सवाल यह रहा कि कैसे पाकिस्तान और भारत के बीच परस्पर तनाव को न्यूनतम करते हुए नई दिल्ली के साथ नए रिश्ते को क़ायम किए जाएं. किस तरह से दोनों ही परमाणु देशों पर नकेल कसी जाए और परमाणु अप्रसार संधि को आगे बढ़ाने के लिए कोई कारगर क़दम उठाने की कोशिश की जाए. ओबामा प्रशासन ने फ़िलहाल अपना ध्यान अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान पर केंद्रित किया है. एक नया मुहावरा अफ़ -पाक गढ़ा गया है. अमेरिका को पता है कि वह भारत की अनदेखी नहीं कर सकता. चीनी ड्रैगन से अगर निबटना है और बाज़ार के तौर पर अमेरिका को भारत में नए मुक़ाम तलाशने हैं, तो उसे भारत से तालमेल बैठाना ही होगा. ओबामा प्रशासन चाहता है कि जब तक अमेरिका की अफ़ -पाक नीति अपने किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती, भारत और पाकिस्तान अपने सीमा पर तनाव पैदा न होने दें और बातचीत का दौर चलता रहे, ताकि पाकिस्तान सेना अपने पश्चिमी इलाक़े में तालिबान और अल-क़ायदा का डट कर मुक़ाबला कर सके. इसे अंजाम देने के लिए अमेरिका ने पाकिस्तान की तरफ़ से यह आश्वासन भी दे दिया है कि पाकिस्तान अपने सीमा क्षेत्र में मौजूद आतंकवादी संगठनों का सफाया करेगा और भारत की सीमा किसी तरह की घुसपैठ से सुरक्षित रहेगी.

हिलेरी क्लिंटन ने अपनी मुलाक़ात में भारतीय नेताओं को भरोसा दिलाने की कोशिश की कि ओबामा भी भारत के साथ उतनी ही नज़दीकी चाहते हैं, जितनी जार्ज बुश के साथ थी. शुरुआती संकेत भले ही ओबामा ने कुछ भी दिए, लेकिन वह भी भारत की बढ़ती ताक़त को समझते हैं. इसका सबसे बड़ा संकेत तो तब मिला, जब परमाणु-करार को जारी रखा गया. भारत और अमेरिका के बीच रिश्तों की कुंजी अर्थव्यवस्था से जुड़ी है. अमेरिका व्यापार में भारत का सबसे बड़ा साझीदार है. अमेरिका का भारत में लगभग 1,000 करोड़ डॉलर का निवेश है. इसके अलावा भारतीय अर्थव्यवस्था भी अमेरिका पर आश्रित है और पिछले साल भारत ने अमेरिका से 370 करोड़ डॉलर का व्यापार किया.

अपने दौरे में हिलेरी क्लिंटन ने कुछ अहम घोषणाएं कीं. इनमें अमेरिकी कंपनियों द्वारा तैयार किए जाने वाले दो परमाणु संयंत्रों की घोषणा शामिल है. भारतीय उद्योग परिसंघ यानी सीआईआई की ताज़ा रिपोर्ट में भी कहा गया है कि अगले 10-15 साल में भारत 24 परमाणु रिएक्टर आयात करेगा. इस परमाणु व्यापार से अमेरिका में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लगभग 20 हज़ार नई नौकरियां मिलेंगी. लेकिन भारत और अमेरिका के बीच हुई परमाणु संधि-जिसके तहत ये रिएक्टर लगाए जाने हैं-उनमें एक अहम कड़ी पर रज़ामंदी बनाने में कुछ पेचीदगी है. मसलन, अमेरिकी कंपनी चाहती है कि रिएक्टर लगाने के काम में अगर कोई नाभिकीय दुर्घटना होती है तो अमेरिकी कंपनी को इसके लिए किसी तरह का हर्जाना देने के लिए बाध्य नहीं किया जाए. इसके अलावा भारत अपनी वायु सेना में सोवियत संघ के ज़माने के लड़ाकू विमानों की जगह नए लड़ाकू विमान शामिल करना चाहता है. अरबों रुपये के इस सौदे को पाने की होड़ में ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के अलावा अमेरिका भी शामिल है. इसलिए कि अमेरिका अच्छी तरह जानता है कि रूस और सेंट्रल एशियाई देश अपने पुराने आर्डर को समय सीमा में रहते नहीं पूरा कर पा रहे हैं, और भारत को अपनी सेना की आपूर्ति के लिए शीघ्र ही कई बड़े आर्डर देने हैं. ऐसे में खरबों डॉलर के आर्डर की उम्मीद अमेरिका की हथियार कंपनियां लगा रही हैं और वह हर हालत में भारत से सौदा करने के लिए तैयार बैठी हैं. अब देखना यह है कि भारतीय राजनयिक इस स्थिति से क्या और कैसे फ़ायदा उठा सकते हैं.

लिहाज़ा, नवंबर के अंत में मनमोहन सिंह की बराक ओबामा से मुलाक़ात भारत-अमेरिका के बीच पनप रहे रिश्तों की दिशा और दशा पर फ़ैसला करेगी. हिलेरी क्लिंटन अपने दौरे में साफ कर गई हैं कि किन मुद्दों पर वह रिश्ता क़ायम किया जाएगा. अब यह भारत के राजनयिकों और राजनीतिक नेतृत्व पर निर्भर करता है कि लेन-देन के इस मधुर संबंध में वह कितना फ़ायदा उठा पाता है और भारत के राष्ट्रीय हित को किस हद तक बचाने और आगे बढ़ाने में सक्षम होता है. इतना तो मालूम ही होगा कि अंतरराष्ट्रीय रिश्ते बिना फ़ायदे के क़ायम नहीं किए जाते.

rahul.chauthiduniya@gmail.com

क्या पाक असफल राष्ट्र है?

वाशिंगटन स्थित स्वतंत्र शोध संस्थान *फंड फॉर पीस* ने वैश्विक स्तर पर सर्वेक्षण कर असफल राष्ट्रों की सूची बनाई है. इसमें पाकिस्तान दसवें पायदान पर है. हमारे देश को असुरक्षित, अस्थिर, आतंकवादियों को पैदा करने वाले और चरमपंथियों के फैलाव के लिए ज़िम्मेदार बताया गया है. संस्थान ने अपने नतीजे 12 सूचकों पर आधारित किए हैं, जिनमें शासक और शासितों का भी संदर्भ है. 2007 में पाकिस्तान का स्थान इस सूची में 12वां था, जिससे फिसलकर यह 2008 में नौवें स्थान पर आ गया. इसका मतलब यह हुआ कि यह पतन पाकिस्तान में लोकतंत्र की बहाली और हालिया नेतृत्व के प्रभावी होने के बाद हुआ. अकादमिक बहस के लिए ही सही, हमें इस पूरी प्रक्रिया की विस्तार से जांच और सूचकों का गहराई से अध्ययन करना होगा. जनसांख्यिकी बंधनों के अतिरिक्त हम उन सूचकों पर भी विचार करें, जिसकी वजह से इस सूची में हमने अपना वर्तमान स्थान पाया है. हमारा निष्कर्ष यही निकला कि यह देश की असफलता नहीं, बल्कि यह असफलता तो नेतृत्व और नीतियों की है. यह भी साबित होता है कि दरअसल यह उन देशों में थोपी गई अमेरिकी नीतियों की असफलता भी है, जिसकी वजह से ये देश अपनी दुर्गति वाली हालत में हैं. छोटे अफ्रीकी देशों के अलावा सोमालिया, सूडान, इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान जैसे देशों को भी असफल राष्ट्रों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है. पाकिस्तान, इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान पर शासन करने वाले नेतृत्व की पीठ पर अमेरिका है. हम लोगों के मामले में यह वाशिंगटन में पका हुआ, कोंडोलिजा राइस का साफ किया हुआ और बॉउचर का लाया हुआ नेतृत्व है. क्या जादुई छड़ी घुमाई गई. कोंडोलिजा राइस और बाउचर के साथ दुबई और दूसरी जगहों पर हुए हमारे नेताओं की गुप्त बैठकों के दौर में जो वचन या वादे हमारे वर्तमान शासकों ने किए, ताकि अमेरिकी हित इलाक़े में परवान चढ़ सकें, वह हमारे लिए शर्म की बात है.

पूर्व राष्ट्रपति, अपना शासन कायम रखने के चक्कर में, घटिया षड्यंत्र का हिस्सेदार बनने से भी नहीं चूके. चुनाव के ठीक पहले वह कुख्यात एनआरओ (नेशनल ऑर्डिनेंस ऑर्डर) लाए और राजनीतिक सौदेबाज़ी करने की कोशिश की. इस तरह के समझौते और चतुराई को आख़िर देश का कौन सा क़ानून- नैतिकता के मूलभूत मापदंड, बौद्धिक ईमानदारी और निष्पक्षता, जो इस्लामिक रिपब्लिक ऑफ पाकिस्तान के आधारस्तंभ हैं, के आधार पर-मंज़ूरी देता है. वैधानिक अपराध और राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र न तो बर्दाश्त करने लायक हैं, न ही अनदेखी करने योग्य. हम लोगों के लिए पुरातन काल अब भी ख़त्म नहीं हुआ है. साबित करने और पछताने के लिए एक मात्र मसला यही है कि अमेरिका-एकमात्र महाशक्ति-और स्वतंत्रता, लोकशाही व मानवाधिकार का प्रतीक चिह्न इतना गिर गया है कि वह एक साखरहित और भ्रष्ट नेताओं की वापसी सुनिश्चित करने के लिए मदद और प्रयोजन दे रहा है. इन सरकारी नुमाइंदों की साख इतनी गिर गई है कि किसी भी पाकिस्तानी की नज़रों में इनकी न तो इज़्ज़त है, न ही कोई प्रतिष्ठा. उनकी लोकप्रियता को तो देश भर के एसएमएस ट्रैफिक से ही समझ लिया जा सकता है. यह सचमुच एक मज़ेदार सर्वे होगा. सबसे हास्यास्पद तो इस संबंध में लागू किया गया क़ानून है. यह सोच बचकानी होगी कि इस संदर्भ में किसी तरह की न्यायिक समीक्षा या रिव्यू होगा. सूचकों के मुताबिक आज हमारे पतन के लिए यह साखरहित नेतृत्व ही ज़िम्मेदार है. इन संभ्रांतों और धड़ो में बंटे नेतृत्व ने वैध और अवैध तरीक़े से धन जमा कर विदेशों में रखा है और इनकी ही वजह से हमारी आज यह हालत है. यह बाहरी हस्तक्षेप ही है, जिसने वर्तमान नेतृत्व को मुख्यधारा में ला दिया. आर्थिक पतन के कारण सरकार की ख़राब आर्थिक और वित्तीय नीतियां हैं. एनआरओ के नाम पर अरबों की लूट खसोट हुई. हाल के वर्षों में बड़े क़र्ज़ों का कोई हिसाब नहीं रखा गया और बहुत हुकूमतों ने उसे माफ कर दिया. इसी तरह काफी पैसा आतंक के विरुद्ध अंतहीन लड़ाई के नाम पर ख़र्च कर दिया गया. हालिया वर्षों में लाहौर में आयोजित दो सेमिनारों में मैंने भाग लिया, जिसका आयोजन काउंसिल ऑफ पाकिस्तान अफेयर्स और पाकिस्तान इंस्टीट्यूट ऑफ पीस ने किया था. प्रतिभागियों में सुदूर पूर्व के अर्थशास्त्री, बिज़नेसमैन, बुद्धिजीवी, प्रोफेसर और इसी क्षेत्र की महान हस्तियां शामिल थीं. इसमें सभी वक्ता अमेरिका के पतन, कम से कम आर्थिक तौर पर, को लेकर प्राय: एकमत थे- जिससे उसके एकमात्र महाशक्ति के तौर पर हस्तक्षेप में कमी आएगी. आतंक के विरुद्ध लड़ाई के कारण उसकी अर्थव्यवस्था अस्थिर हुई है, उसमें काफी कुछ ख़राबी आई है. आतंक के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए ख़र्च किए गए अरबों डॉलरों के चलते अमेरिका की आर्थिक क्षमता पर काफी दवाब पड़ा है. यह उसकी शक्ति को कमज़ोर कर देगा और वह अलग-अलग क्षेत्रों -जैसा कि हम इन्हें कह सकते हैं-में टूट जाएगा- दूसरे नहीं तो कम से कम भाषायी पहचान के आधार पर तो ज़रूर. यह निष्कर्ष किसी भविष्यवाणी और विरोधाभास के जैसा था जो वास्तविकता से काफी दूर है और ऐसा होने वाला भी नहीं है. हालांकि आज हम इस तरह की घटनाओं और मांगों के गवाह हैं. दक्षिण में स्पेनिश को मुख्य भाषा बनाने की मांग हो रही है. मैक्सिकन बहुल क्षेत्रों की अपनी शिकायतें हैं. बड़े पैमाने पर सब्सिडी और आर्थिक मदद से, बड़े व्यापारों और बैंकों को ज़िंदा रखा गया, वहीं कई अन्य बर्बाद हो गए. बेरोज़गारी और छंटनी में वृद्धि हुई है. पाकिस्तानी विचारक अपने पूर्वानुमान में सही साबित हुए.

हमारी जनसंख्या के 40 फ़ीसदी से अधिक लोग ग़रीबी रेखा के नीचे हैं. वे ज़िंदगी की मूलभूत सुविधाओं की पहुंच से काफी दूर हैं. सिर्फ़ मूलभूत सुविधाएं ही नहीं बल्कि मूलभूत ज़रूरतें जैसे शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य यहां तक कि पीने के साफ पानी से भी महरूम हैं. रोज़मर्रा की चीज़ें उनकी पहुंच से काफी दूर है. वहां की मजबूर अवाम न्याय, समानता और रोज़गार के लिए कराह रही है. सही शासन प्रणाली नहीं होने के कारण उनकी ज़िंदगी बदतर हो गई है. मदद के नाम पर उनके पास कुछ भी नहीं है. घूसखोरी, सरकार का ढीला नियंत्रण, भ्रष्टाचार, नरसंहार और क़ानून के साथ खिलवाड़ करने वाले क़ानून की पकड़ से काफी दूर हैं. दर्जनों शवों को न सिर्फ़ बिना शिनाख्त के जलाया गया, बल्कि उनके हत्यारों को पहचाना तक नहीं गया. विपक्ष, जो पंजाब में गठबंधन सरकार में शामिल है और केंद्र से भी उसके संबंध अच्छे नहीं है, ने इसका मुआयना करने और उसे संतुलित करने में अपनी भूमिका नहीं निभाई. आवाम की आवाज़, मूल्य वृद्धि का भार, क़ानून व्यवस्था आदि के बारे में किसी ने आवाज़ नहीं उठाई. वे सिर्फ़ मुख्य न्यायाधीश के पास ही रोज़मर्रा की सामूहिक या व्यक्तिगत शिकायतें लेकर आते हैं. विपक्ष को उनकी भूमिका नहीं निभाने दिया गया है. बजट सत्र में विपक्ष के क़ानून व्यवस्था के संबंध में एक प्रस्ताव को वापस ले लिया.

धार्मिक मामलों के मंत्री के तौर पर मुझे राष्ट्रपति मुशर्रफ से कई बैठकें करने का मौका मिला. इस्लामिक शिक्षा संस्थानों और उनके पाठ्यक्रमों के संबंध में मैं विदेशी दबाव और प्रतिबंध का विरोध करता रहा. हालांकि यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है, लेकिन मैंने लाल मस्जिद मामले से निपटने के तरीक़े पर भी सवाल उठाए. 2006 में एक बैठक में राष्ट्रपति मुशर्रफ ने मुझसे कहा कि मैं संसद के एमएमए सदस्यों का समर्थन न करूं, क्योंकि नए निज़ाम में उनको राजनीतिक क्षेत्र में उभरने या महत्व हासिल करने का मौका नहीं मिलेगा. सिर्फ़ धर्मनिरपेक्ष और आधुनिकवादी को ही भूमिका के लिए स्वीकृति मिलेगी. जनरल मुशर्रफ ने इस पर ज़ोर दिया कि सरकार धार्मिक तत्वों को अलग करना चाहती है और वह भी यही चाहते हैं. लाल मस्जिद और दूसरे मामलों में मुशर्रफ ने स्पष्ट संकेत दिए कि मुझे अपने वास्तविक विचारों को छोड़ना चाहिए. एक बार तो मैंने इस्तीफ़े के बारे में सोचा. हालांकि मुझे रोक लिया गया, फिर भी कई बार मैंने नुमाइंदों के विवेक को जगाना चाहा.

हालांकि ऐसा नहीं हुआ और मेरा मन लाल मस्जिद में मारे गए मासूमों के लिए रोता है. मैंने इस्तीफ़ा नहीं दिया, लेकिन गंभीरता से महसूस किया कि विपक्षी दलों में अब अधिक विवेक और अपनी मांगें रखने वाला होगा. इससे कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि पाकिस्तान असफल राष्ट्र नहीं है. यह सीधे-सीधे उसके और शासक आकाओं की विफलता है.

एजाज़ उल हक़
लेखक पाकिस्तान में मंत्री रहे हैं
feedback.chauthiduniya@gmail.com

सीबीआई पर नहीं लग सकता पक्षपात का आरोप -अश्विनी कुमार

सीबीआई निदेशक अश्विनी कुमार को अपनी पसंदीदा और ऑस्कर विजेता फिल्म स्लमडॉग मिलिनेयर का एक दृश्य बख़ूबी याद है. उस दृश्य में फिल्म के नायक को वह किरदार एक सवाल का ग़लत जवाब बताता है, जिसे अनिल कपूर ने निभाया है. हालांकि चायवाले का किरदार निभा रहा नायक उसकी बात मानने के बजाय दूसरा जवाब देकर जीत जाता है. अश्विनी कुमार ज़ोर देकर कहते हैं–उसने दूसरों की मानने के बजाय अपने पर और अपने दिल की आवाज़ पर भरोसा किया. उसे ख़ुद पर विश्वास था.

लगता है, देश की सर्वोच्च जांच एजेंसी के मुखिया और प्रसिद्ध आईपीएस अधिकारी अश्विनी कुमार को भी अपने पर और अपनी सोच पर ऐसा ही भरोसा है, जिसने उन्हें इस मुक़ाम तक पहुंचाया है. वह चाहते हैं कि दूसरे रास्ते ढूंढने के बजाय ख़ुद पर भरोसा रखने का यह संदेश उनके और उनके स्टाफ ही नहीं, सभी समझ लें.

अश्विनी कुमार एक ख़ास तरह के व्यक्ति हैं. वह दूसरों से जुदा हैं. शायद वह पहले अधिकारी हैं जो अपने दफ़्तर के बाहर खड़े, धूप और बारिश से जूझने वाले मीडिया कर्मियों की दिक़्क़त समझते हैं. तभी तो उन्होंने एक हफ़्ते के संवाददाता प्रशिक्षण कार्यक्रम के अलावा, पत्रकारों से बातचीत के लिए एक अलग मीडिया रूम की व्यवस्था की.

पारदर्शिता और बातचीत पर ज़ोर देते हुए अश्विनी कुमार ने ख़ुद ही इस प्रशिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत की, जिसमें मीडिया को सीबीआई से परिचित कराया जाता है. उनका कहना है–हम मीडिया की भूमिका को समझते हैं और अपने काम के तरीक़े से उनका परिचय कराना चाहते हैं.

मीडिया के अलावा, अश्विनी कुमार ने अपने स्टाफ के साथ भी अच्छे संबंध बनाए हैं. नए साल के अपने संदेश में उन्होंने ज़ोर देते हुए कहा कि हमें सरकार, संसद, न्यायपालिका, मीडिया और देश और दुनिया की कई अन्य संस्थाओं की आशाओं को पूरा करने के लिए बहुत कुछ करने की ज़रूरत है. हमारा उद्देश्य सीबीआई को दुनिया का सबसे बेहतर और सबसे पेशेवर संगठन बनाना है. इसके लिए हमें पहले ख़ुद को और फिर दूसरों को बदलना होगा.

हिमाचल काडर के 1973 बैच के आईपीएस अधिकारी अश्विनी कुमार सीबीआई के निदेशक बनने से पहले हिमाचल के डीजीपी थे. इससे पहले वह सीबीआई के सहायक निदेशक और अतिरिक्त निदेशक की ज़िम्मेदारियां संभाल चुके हैं. उन्होंने राज्य सेवा के अपने 25 वर्षों के दौरान अतिरिक्त एसपी से लेकर डीजीपी तक की भूमिकाएं निभाई हैं.

अपनी बात कहने में माहिर, मृदुभाषी अश्विनी कुमार से सीबीआई को सबसे बेहतर संगठन बनाने के उनके विज़न से जुड़े मसलों पर बातचीत की ***अंजुम ए ज़ैदी*** *और* ***एस रिज़वी*** *ने. पेश हैं बातचीत के प्रमुख अंश :*

फोटो– **प्रभात पाण्डेय**

जब से आप सीबीआई के निदेशक बने हैं, मीडिया से संपर्क बढ़ा है. क्या यह पारदर्शिता लाने के प्रयासों का हिस्सा है ?

मीडिया और न्यायपालिका लोकतंत्र के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं. हम उनकी भूमिका को जानते हैं और उसके महत्व को समझते हैं. दोनों भ्रष्टाचार से लड़ने में अहम भूमिका निभाते हैं. भ्रष्टाचार से लड़ने में मीडिया के पास तो कई तरह के हथियार हैं. जैसे–सूचना, शिक्षा और संवाद. बातचीत से मेरा उद्देश्य भारतीय मीडिया की भूमिका पर विचार करना और उसे समझना भी था. मुझे आश्चर्य है कि मीडिया की भूमिका जांच और चार्जशीट तक ही सूचना देने की है. कोर्ट की कार्रवाई पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता. ब्रिटेन, अमेरिका, जापान, सिंगापुर जैसे देशों में पुलिस, जांच एजेंसी और कोर्ट पर मीडिया का पूरा ध्यान रहता है. जहां तक सीबीआई की बात है, हमारी भूमिका जांच और चार्जशीट दाख़िल करने तक की है. आरोपी की परख, सुनवाई, गवाही और आख़िरी फ़ैसले का अधिकार केवल कोर्ट के पास है.

मीडिया ट्रायल और स्टिंग ऑपरेशनों पर आपकी क्या राय है?

मैं पुराने विचारों वाला अधिकारी हूं और मैं जानता हूं कि मुझे किसलिए प्रशिक्षित किया गया है. यह स्वाभाविक है कि मुझे नई तकनीकों और तरीक़ों के साथ बदलने में वक़्त लगेगा. हालांकि यह तो सच है कि कोर्ट और पुलिस की जगह कोई नहीं ले सकता. इसलिए मीडिया को किसी नए सिस्टम का आविष्कार नहीं करना चाहिए. बल्कि सरकार को मीडिया ट्रायल के लिए दिशानिर्देश या क़ानून तय करने चाहिए या ऐसे मानक तय करने चाहिए जिनसे स्टिंग ऑपरेशन या मीडिया ट्रायल सही तरीक़े से हों. आप देखिए कि लंदन मेट्रो विस्फोट मामले में क्या हुआ–पूरी जांच के दौरान मीडिया ने वही सूचनाएं दीं जो कि स्कॉटलैंड यार्ड ने उसे दी थीं. इसी के मद्देनज़र हमने मीडिया के सहयोग से पहले एक कार्यक्रम शुरू किया था और उसे 20 जुलाई से दोबारा ला रहे हैं. इसका उद्देश्य मीडिया को सीबीआई के काम करने के तरीक़े, जांच के तरीक़े, चुनौतियों और सीमाओं से परिचित कराना था. हमारा उद्देश्य मीडिया को एजेंसी के कामकाज से वाक़िफ़ कराना था, जिससे अगली बार वह कोई ख़बर देने से पहले सारे पहलुओं पर सोच समझकर फ़ैसला ले सकें.

कैसी प्रतिक्रियाएं रहीं?

जिन्होंने भी इसमें भाग लिया है, वे हमारे काम के तरीक़े को समझने लगे हैं. मुझे यह मानने में कोई गुरेज नहीं है कि मुझे पत्रकारिता के बारे में बहुत कम जानकारी और समझ है, लेकिन इस प्रयास का अनुभव बेहद अच्छा रहा है. यहां तक कि हमने मीडियाकर्मियों के सामने पॉलीग्राफ टेस्ट का प्रदर्शन भी दिखाया.

वकीलों के बारे में क्या सोचते हैं?

वकीलों का व्यवहार दरअसल कई सालों से नज़रअंदाज़ की जा रही वकालत की शिक्षा का परिणाम है. स्तर गिरा है, जवाबदेही घटी है. यह स्थिति ज़्यादा दिन नहीं रहेगी और सुधार के उपाय जल्द आने वाले हैं. यहां प्रोफेशनलिज़्म की ज़रूरत है. वैसे लॉ कॉलेजों से कई ऐसे अच्छे वकील निकलकर आ रहे हैं.

सीबीआई पर राजनीतिक आकाओं के इशारों पर काम करने के आरोप लगते रहे हैं?

मैं कुछ सच आपके सामने रखना चाहूंगा– (1) सीबीआई हर काम लिखित तौर पर करती है. (2) वह न्यायालय में सच्ची रिपोर्ट पेश करती है. (3) वह इसकी प्रति हर आरोपित और संबंधित लोगों को भेजती है. इसलिए सीबीआई को कई तरह की आलोचनाओं का सामना करना पड़ता है. लेकिन सच्चाई यही है कि कोई इस पर पक्षपात का आरोप नहीं लगा सकता. सीबीआई के बारे में यह मिथक पूरी तरह से ग़लत है कि वह सत्ताधारी पार्टी के लिए काम करती है.

यह गर्व की बात है कि कभी भी किसी न्यायालय ने सीबीआई की बड़ी जांचों के बारे में हमारे ख़िलाफ़ टिप्पणी नहीं की है. मुझे लगता है कि अदालत ही सर्वोच्च है और इसलिए हमें ऐसे मिथकों पर ध्यान नहीं देना चाहिए. मैं यह ज़ोर देकर कहना चाहूंगा कि पूरे देश को सबसे बड़ी जांच एजेंसी के तौर पर सीबीआई की जांच, कामकाज और उसके सफल रिकार्ड पर पूरा भरोसा है.

क्या यह विरोधाभास अजीब नहीं कि जो सीबीआई पर ऐसे आरोप लगाते हैं, वही किसी भी बड़े मामले में सीबीआई जांच की मांग भी करते हैं?

हां. सीबीआई ने अपनी साख बनाई है और हम अपने काम पर और समय के साथ आगे बढ़ने पर केंद्रित हैं. हम दिए गए काम के लिए प्रतिबद्ध हैं. हालांकि मैं मानता हूं कि सुधार की गुंजाइश अभी भी है, क्योंकि हर आलोचना बेमतलब नहीं होती और इसी वजह से मैंने प्राथमिकताओं का एक एक्शन प्लान बनाया है. मैंने नववर्ष के दिन सभी सीबीआई कर्मचारियों को इसके बारे में संबोधित किया, जिसमें मैंने अगले दो सालों के लक्ष्य की बात की. हमारा लक्ष्य है कि हम सभी जांचों को एक साल के भीतर ख़त्म कर लें और विभागों के द्वारा ऐसी संक्षिप्त और संपूर्ण रिपोर्ट दायर हो जिसे लोग पढ़ और समझ सकें.

यह लक्ष्य कैसे हासिल करेंगे?

इसके लिए हम कुछ बुनियादी बदलाव कर रहे हैं. जैसे, जांच अधिकारियों को ज़रूरी तकनीक (लैपटॉप और मोबाइल) दे दिए गए हैं. जांच अधिकारियों की व्यवस्था को जांच टीमों में बदल दिया गया है, जो कम से कम तीन या अधिकतम पांच अधिकारियों की होगी. यह बदलाव पारदर्शिता लाने के मक़सद से किया गया है, क्योंकि जब सभी को मामले की पूरी जानकारी हो तो सभी सदस्यों को एक साथ प्रभावित करना मुश्किल है. इससे प्रोफेशनलिज़्म और विश्वास बढ़ेगा. इसके अलावा मामले की पैरवी भी एक समस्या है. अदालतें काफी समय लेती हैं. इसके लिए भी टीमों की व्यवस्था की गई है.

सीबीआई की सत्यम मामले जांच की तारीफ़ हुई है, क्या यह आपके नए तरीक़े की शुरुआत है?

क़रीब 7300 करोड़ के सत्यम वाले मामले की जांच 67 जांच अधिकारियों ने की. इसमें चार्टर्ड अकाउंटेंट, आयकर अधिकारी और दूसरे विभागों के लोग शामिल थे. हमने 45 दिनों के अंदर 12–13 पन्नों की संक्षिप्त लेकिन संपूर्ण रिपोर्ट दायर की, जबकि पूरी जांच के 65000 पन्नों के दस्तावेज़ और 533 गवाह थे. हमें इस मामले में दुनिया भर से तारीफ़ मिली है, और अपने पेशेवर अंदाज़ और कार्यकुशलता की वजह से पहली बार हमें आलोचना नहीं झेलनी पड़ी है.

आप सीबीआई को दो सालों में कहां देखते हैं?

मैंने पिछले 35 सालों में कई पदों पर काम किया है. इनमें से 25 साल तो मैं राज्य सेवा में रहा हूं और बाक़ी समय केंद्र में. निदेशक के तौर पर मैं सीबीआई और राज्य पुलिस के बीच समन्वय बढ़ाने पर काम करना चाहूंगा. अगर हम इस पर काम कर पाए तो कई चीज़ें अपने आप सुधर जाएंगी. राज्य स्तर पर काम करते हुए मैंने सिक्के के दूसरे पहलू को देखा है और मुझे विश्वास है कि यह सीबीआई के काम के तरीक़े और नीतियों पर काफी असर डालेगा. आंतरिक पुलिसिंग भी एक ऐसा मुद्दा है, जिस पर काम करने की ज़रूरत है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

फ़र्ज़ी विवाह करने वाले एन.आर.आई. पतियों पर कसेगा शिकंजा

संध्या पाण्डे

मध्य प्रदेश सरकार ने उन एन.आर.आई. युवकों पर शिकंजा कस दिया है, जो राज्य की युवतियों से विवाह करने के बाद उन्हें उपेक्षित छोड़कर विदेश चले जाते हैं, या फिर दहेज की मांग करके मानसिक रूप से प्रताड़ित करते हैं, या फिर विदेश जाकर वहां दूसरा विवाह रचा लेते हैं. ऐसे युवकों के ख़िलाफ़ अदालतों में कई मुकदमे चल रहे हैं, लेकिन विदेश में बसे होने के कारण उनके ख़िलाफ़ अदालती समन और वारंट कानूनी अड़चनों के कारण तामील नहीं हो पाते हैं. इस कारण मुकदमा लंबे समय तक बिना सुनवाई के ही खिंचता रहता है और अदालत भी लाचार बनी रहती है. इस समस्या पर राज्य सरकार लंबे समय से विचार कर रही थी. अब उसने उन उपेक्षित, अघोषित परित्यक्ता और दहेज पीड़ित युवतियों को न्याय दिलाने के लिए कठोर फ़ैसले लेने पर गंभीर रूप से विचार शुरू कर दिया है. अदालत में चल रहे ऐसे मामलों में यदि आरोपी एन.आर.आई. सुनवाई के लिए उपस्थित नहीं होते हैं, तो उनकी राज्य में स्थित संपत्ति कुर्क कर ली जाएगी और जब तक वे अदालत में उपस्थित नहीं होंगे, संपत्ति कुर्क ही रहेगी.

राज्य के कई सामाजिक और महिला संगठन इस बारे में राज्य सरकार को सलाह देते रहे हैं. राजधानी की तीन विवाहित युवतियों ने दहेज प्रताड़ना और एन.आर.आई. पति द्वारा तिरस्कार के मामले में दो साल पहले पुलिस में रिपोर्ट दर्ज़ कराई थी. पुलिस ने नियमानुसार जांच कर मामला न्याय के लिए अदालत में भेज दिया, लेकिन सुनवाई के लिए एन.आर.आई. पति कभी भी उपस्थित नहीं हुए. अदालत के आदेश पर पुलिस ने दूतावासों के ज़रिए एन.आर.आई. पतियों को सूचना भी भिजवाई, लेकिन कोई कार्यवाही नहीं हुई.

महिला थाना प्रभारी मंजुला मिश्रा का कहना है कि आस्ट्रेलिया में कार्यरत एक विवाहित युवक नरेश शाह के मामले में दो साल से पुलिस परेशान है. दूतावास के माध्यम से भी उसे अदालती सूचना भिजवाई गई, लेकिन वह उपस्थित नहीं हुआ. इसी तरह आस्ट्रेलिया में ही कार्यरत प्रताप सिंह के ख़िलाफ़ भी मामला चल रहा है और परवेज़ नामक युवक जो दुबई में नौकरी कर रहा है, उसके ख़िलाफ़ भी दहेज प्रताड़ना का मामला अदालत में चल रहा है. ऐसे और भी कई मामले हैं. कुछ ऐसे भी मामले हैं, जिनमें कई युवकों ने भारत में विवाह करने से पहले या बाद में विदेशों में दूसरी युवतियों से विवाह किए हैं और वे अपनी भारतीय पत्नियों को छोड़कर विदेश में दूसरी पत्नी के साथ रह रहे हैं. वैश्वीकरण के इस दौर में आम भारतीयों में विदेशी दामाद की मांग और समाज के मध्यम वर्ग की उच्च शिक्षित सुंदर युवतियों में भी एन.आर.आई. पति की चाह बढ़ती जा रही है. लेकिन कई मामलों में विदेशी दामाद पूरे परिवार के लिए परेशानी और युवतियों के लिए त्रास और प्रताड़ना देने का कारण बन गए हैं.

भोपाल में भी एन.आर.आई. युवकों से विवाह रचाने वाली युवतियों की संख्या पिछले पांच–छह सालों में तेजी से बढ़ी है. कई ऐसे भी मामले हैं जिनमें विवाह रचाने और कुछ दिन युवा पत्नी का उपभोग कर लेने के बाद एन.आर.आई. पति उसे मायके में छोड़कर विदेश चले जाते हैं और फिर लौट कर आने का नाम ही नहीं लेते. कुछ मामलों में तो ऐसे युवक अपने परिवार की सेवा और वृद्ध माता पिता की देखभाल के लिए अपनी पत्नियों को ससुराल में छोड़ देते हैं और विदेश में मस्त रहते हैं. भोपाल में ऐसे दर्जनों मामले प्रकाश में आए हैं. इनमें से कई मामलों में पुलिस में शिकायत की गई है, जिनमें पुलिस जांच कर रही है. लेकिन कुछ ऐसे भी मामले हैं जिनमें क़ानून आड़े आ जाता है और विदेशी पति, भारतीय पुलिस की पकड़ से दूर सुरक्षित रहते हैं.

एक मामला तो 20 वर्ष पुराना है. यहां के एक एन.आर.आई. युवक का विवाह दिल्ली की युवती से हुआ और विवाह के बाद युवक अपनी नौकरी पर अमेरिका चला गया. कुछ दिनों तक तो वह अपनी पत्नी को पत्र और फोन द्वारा अमेरिका ले जाने का झांसा देता रहा, लेकिन बाद में संपर्क ही बंद कर दिया. दिल्ली की इस युवती ने युवक के माता–पिता से लगातार संपर्क किए, लेकिन उन्होंने भी उसकी कोई सहायता नहीं की. मामला दिल्ली की अदालत में चल रहा है और युवक अब बूढ़ा हो चुका है, लेकिन अपनी पत्नी को दिल्ली में छोड़कर आराम से अमेरिका में रह रहा है.

अप्रैल 2007 में एयरपोर्ट एरिया निवासी एक नवविवाहिता ने एन.आर.आई. पति और उसके परिवार वालों के ख़िलाफ़ दहेज प्रताड़ना का मामला महिला पुलिस थाने में दर्ज़ कराया, लेकिन आज तक कोई कार्यवाही नहीं हुई.

आस्ट्रेलिया में ऊंची नौकरी कर रहे राजस्थान निवासी नरेश शाह की पांच वर्ष पहले भोपाल की एक युवती से शादी हुई थी, लेकिन शादी के कुछ दिनों बाद पति ने पत्नी को ससुराल में छोड़ दिया. वहां उसे दहेज के लिए प्रताड़ित किया गया. इसी तरह युवती लौटकर अपने मायके भोपाल आई और उसके अप्रैल 2008 में पुलिस में दहेज प्रताड़ना और पति द्वारा त्याग के मामले में रिपोर्ट दर्ज़ कराई, लेकिन उस पर कोई कार्यवाही नहीं हुई. एक अन्य मामला कोहेफिजा निवासी परवेज़ का है, जो दुबई में नौकरी करते हैं. उनकी पत्नी ने शादी के पांच साल बाद दहेज प्रताड़ना का मामला दर्ज़ कराया है, जबकि पति ने पत्नी को अघोषित रूप से बेसहारा छोड़ रखा है. कुछ तो ऐसे मामले हैं कि एन.आर.आई. पति विवाह के बाद पत्नी को अपने साथ विदेश तो ले गया, लेकिन गर्भवती होने के बाद भोपाल में छोड़ गया और अब पत्नी और बच्चे की कोई सुध नहीं ले रहा है. महिला थाने के ज़िम्मेदार अधिकारियों का कहना है कि एन.आर.आई. के साथ विवाह के कई मामलों में शिकायतें मिल रही हैं, लेकिन पति के विदेश में रहने के कारण महिला थाना या विवाह परामर्श केन्द्र इन शिकायतों का निपटारा जल्दी नहीं कर पाते हैं. लेकिन जिन ममालों में दहेज मांगने के प्रमाण मिले हैं और विवाहिता को शारीरिक, मानसिक रूप से प्रताड़ित करने के सबूत या भरोसेमंद गवाह मिले हैं, उन मामलों में परामर्श केंद्र से समझौता कराया गया है और उसके नतीजे अच्छे भी निकले हैं. कुछ मामलों में अदालतों में प्रकरण दर्ज़ कराए गए हैं, जो न्यायिक प्रक्रिया के तहत विचाराधीन हैं. क़ानून के जानकारों का मानना है कि अदालतों में विचाराधीन मामलों में एन.आर.आई. आरोपी के उपस्थित न होने पर यदि उसकी संपत्ति कुर्क करने का नियम लागू हो गया, तो निश्चित रूप से उसका अच्छा असर पड़ेगा और एन.आर.आई. पतियों पर दबाव बनेगा तथा उनकी उपेक्षित और पीड़ित पत्नियों को जल्दी न्याय मिल सकेगा.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

कर लो दुनिया मुट्ठी में

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

नौकरी के लिहाज़ से लड़कियों के लिए और अनुकूल समय आने वाला है. समय के साथ उनके लिए शिक्षा के स्तर में सुधार के साथ-साथ उसका दायरा भी बढ़ाया जा रहा है. यानी लड़कियों के लिए अवसर बहुत अधिक बढ़ने वाले हैं. ऐसे में अगर लड़कियां सावधानी और समझदारी के साथ करियर का चुनाव करें, तो उन्हें सफल होने से कोई नहीं रोक सकता. हालांकि इसमें जटिलताएं भी कम नहीं हैं. फिर भी कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जो लड़कियों के लिए बेहद लाभकारी हैं.

स्वास्थ्य का क्षेत्र

यह क्षेत्र अब केवल डॉक्टर या जनरल प्रैक्टिशनर का नहीं रह गया है. अब इसमें संभावनाओं की कोई कमी नहीं रह गई है. केवल एमबीबीएस, एमएस या ऐसी ही बड़ी डिग्रियां ही इस क्षेत्र में कामयाबी नहीं दिलाती हैं, बल्कि न्यूट्रिशन व डायट्रीक्स, ऑप्टोमेट्री, फिजियोथेरेपी, लाइफस्टाइल व फिटनेस एक्सपर्ट, नर्सिंग, साइटोटेक्नोलॉजिस्ट, स्पीच लैंग्वेज पैथोलॉजिस्ट, डेंटल हाइजिनिस्ट, हेल्थ एजुकेटर, ऑर्थोटिस्ट, प्रोस्थेटिक्स व आर्थोटिक्स, ऑक्युपेशनल थेरेपी, रैडिएशन थेरेपिस्ट आदि की शिक्षा भी इस क्षेत्र में करियर बनाने में लाभप्रद हैं. हर हॉस्पिटल, क्लीनिक और स्वास्थ्य केंद्रों पर इन लोगों की बेहद ज़रूरत होती है. ऐसे में इस क्षेत्र में अपार संभावनाएं नज़र आती हैं. बिना किसी अनावश्यक तनाव के इस क्षेत्र में उपलब्धियां बहुत आसानी से हासिल की जा सकती हैं. इस क्षेत्र में लड़कियों को प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि प्रकृति ने महिलाओं को संरक्षण और ममत्व के गुणों से लबरेज किया है, जो इस क्षेत्र के लिए सबसे ज़रूरी है. इन कोर्सों की पढ़ाई बहुत आसानी से कई सरकारी और निजी संस्थानों में कराई जाती है. इसमें डिप्लोमा के अलावा मास्टर डिग्री कोर्स भी उपलब्ध है. इनके लिए बारहवीं के बाद डिप्लोमा कोर्स और स्नातक के बाद पोस्ट-ग्रेजुएट व पी.जी डिप्लोमा कोर्स किए जा सकते हैं.

फाइनेंसियल एक्सपर्ट

फाइनेंस से संबंधित कोर्स में फाइनेंसियल अकाउंटिंग और इकोनॉमिक्स पर पर ख़ास ज़ोर दिया जाता है. कॉमर्स पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों के लिए यह एक बेहतर करियर ऑप्शन है. पर दूसरे संकाय के विद्यार्थी भी इसमें अपना भविष्य संवार सकते हैं. इसमें प्रवेश पाने के लिए 12वीं कक्षा में किसी भी संकाय में 50 प्रतिशत अंक से उत्तीर्ण होना अनिवार्य होता है. एडमिशन के लिए मेरिट या एंट्रेंस टेस्ट होता है. फाइनेंसियल सर्विस में पैसे का इस्तेमाल करना, किसी भी इन्वेस्टमेंट पर अधिक से अधिक रिटर्न प्रदान करना होता है. इसके साथ ही फाइनेंसियल प्लानिंग में इनका अहम योगदान होता है. इसके अलावा कंपनी के पूर्ण वित्तीय प्रबंधन को समझना होता है और शीर्ष प्रबंधकों को वित्तीय और आर्थिक नीतियों को बनाकर लागू करने में मदद करना होता है. साथ ही क्रेडिट कार्ड ऑपरेशंस का भी क्षेत्र है, जहां फाइनेंस के जानकारों का भरपूर काम होता है. मार्केट के हिसाब से भी इस क्षेत्र में रोज़गार के कई अवसर विकसित हुए हैं. ऐसे में यह क्षेत्र बिना किसी भाग-दौड़ के महिलाओं के लिए बेहतरीन करियर ऑप्शन बन जाता है.

डाटा-बेस व सिस्टम एडमिनिस्ट्रेटर

किसी भी कंपनी के लिए उसका डाटा यानी कंपनी से जुड़ी ज़रूरी चीज़ें बहुत महत्वपूर्ण होती हैं. इसके अंतर्गत डाटा को इस प्रकार संभाल कर कंप्यूटर में रखा जाता है, जिसे ज़रूरत पड़ने पर आसानी से इस्तेमाल व अपडेट किया जा सके. हर छोटी-बड़ी कंपनियों में डाटा मेंटेन करने और अपडेट करने का काम लगातार किया जाता है. इसे देखते हुए डाटा-बेस प्रोफेशनलों की मांग काफी है. इस क्षेत्र की ख़ूबी यह भी है कि इस काम को किसी कंपनी के लिए घर से भी किया जा सकता है. सिस्टम एडमिनिस्ट्रेटर का मुख्य काम कनेक्टिविटी और इंटरनेट की सुविधा प्रदान करना होता है. आईटी क्षेत्र में नेटवर्किंग काफी महत्वपूर्ण है. इसके माध्यम से कंप्यूटर एक-दूसरे से जुड़े होते हैं और एक कंप्यूटर का डाटा सर्वर के माध्यम से दूसरे कंप्यूटर में देखा और ट्रांसफर किया जा सकता है. बैंकों के एटीएम, रेलवे रिजर्वेशन, अख़बार, इंटरनेट आदि की सुविधा इसकी बदौलत ही मिल पाती है. यही वजह है कि आज हर छोटे-बड़े संस्थान में कंप्यूटर नेटवर्किंग के लिए सिस्टम एडमिनिस्ट्रेटर की ज़रूरत होती है. हलांकि इस क्षेत्र में काम करने वालों को सिस्टम सिक्योरिटी के साथ-साथ नेटवर्किंग सिक्योरिटी का भी ध्यान रखना होता है. इसके अलावा इस क्षेत्र में कैड स्पेशलिस्ट, सिस्टम आर्किटेक्ट, विजुअल डिज़ाइनर, एचटीएमएल प्रोग्रामर, डोमेन स्पेशलिस्ट, इंफॉर्मेशन सिक्योरिटी एक्सपर्ट, इंटिग्रेशन स्पेशलिस्ट, कम्युनिकेशन इंजीनियर, सेमीकंडक्टर स्पेशलिस्ट आदि के रूप में भी काम कर सकते हैं.

शिक्षा व प्रशिक्षण

शिक्षा के बिना विकसित समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है. मंदी के इस दौर में विशेषज्ञों का तर्क यह भी है कि शिक्षा संबंधी कंपनियां ही मंदी को मात दे सकती हैं. इस क्षेत्र की महत्ता को समझते हुए सरकार भी अब भारत को एजुकेशन हब बनाने की कोशिश कर रही है. इसी के तहत आने वाले समय में और नए आईआईटी, आईआईएम सरीखे शिक्षण संस्थान खुलेंगे. उच्च शिक्षा के साथ ही सरकार माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी बदलाव करने जा रही है. जिस तेज़ी से इस क्षेत्र में कायापलट की तैयारी चल रही है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में संभावनाएं अपार होने वाली हैं. शिक्षक बनने के लिए किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से इसकी ट्रेनिंग आवश्यक है.

इंजीनियरिंग

इस क्षेत्र में भी काफी दम है. हेवी-इंजीनियरिंग और लाइट इंजीनियरिंग के क्षेत्र में मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, केमिकल, सिविल, आईटी, आईटीईएस आदि इंजीनियरों की मांग कम नहीं हो रही है. भले ही इस समय इस क्षेत्र में मंदी छाई है, लेकिन करियर की दृष्टि से यह एक बेहतरीन फील्ड आज भी है. वित्तीय वर्ष 2008 में डोमेस्टिक आईटी मार्केट ने बेहतर विकास दर हासिल किया है. कंप्यूटर के क्षेत्र में रोजगार की बढ़ती संभावनाओं के साथ ही यह क्षेत्र और उन्नति करने वाला है. इंजीनियरिंग क्षेत्र को इंडस्ट्री का बैक बोन माना जाता है. इस वजह से सरकार भी इसके आगे बढ़ने के लिए कदम उठा रही है और इसे एक मज़बूत मुक़ाम पर लाने की कोशिश की जा रही है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

त्वचा को बचाएं बरसाती बीमारियों से

रीतिका सोनाली

तपती गरमी के बाद जब बरसात के मौसम में बारिश की बूंदें त्वचा को छूती हैं तो बड़ा ख़ूबसूरत अहसास कराती हैं, लेकिन कीटाणुओं के पैदा होने के लिए भी बरसात सबसे अनुकूल मौसम होता है. ख़ासकर नमी की वजह से जिसमें ये कीटाणु त्वचा संबंधी बीमारियों को ख़ूब फैलाते हैं.

फफूंद/फंगल इंफेक्शन : बरसात के मौसम में पसीना आसानी से उड़ता या सूखता नहीं है और त्वचा नम रहती है. गीली त्वचा में फंगस बढ़ने लगता है. फंगल इंफेक्शन बगल, जोड़ों, हाथ-पैर की उंगलियों के जोड़, जांघ, बालों के बीच ख़ास तौर पर होता है. ऐसे में सबसे ज़्यादा परेशान खुजली करती है, साथ ही खुजलाने से नाख़ूनों के अंदर भी सेकेंडरी इंफेक्शन हो जाता है, जो काफी परेशान करती है. इसके अलावा इन जगहों पर पस पड़ना, बगल में या रगड़ खाने वाली जगह पर छीलने से पस हो जाने से काफी परेशानी होती है. दरअसल फंगस एक प्रकार का त्वचा-परजीवी है जो त्वचा से इसके सारे पोषक तत्व खींच लेता है. त्वचा पर रैशेज के साथ खुजलाहट दे जाता है. ये हर प्रकार के मौसम में जिंदा रह सकते हैं इसलिए इनसे छुटकारा पाना इतना आसान नहीं होता है. इसका एक प्रकार दाद/रिंगवॉर्म होता है जो हाथ-पैर की उंगलियों के बीच में छोटे-छोटे गोल लाल धब्बों के रूप में उभरता है और इंफेक्शन पैदा करता है. नमी से फंगस बढ़ता है इसलिए इस मौसम में यह ध्यान रखें कि शरीर का कोई भी अंग गीला न रहे. नहाकर आने के बाद हर अंग को तौलिये से बिल्कुल अच्छे से सुखा लें, खासकर शरीर के उन हिस्सों को जिसमें फोल्ड/तह पड़ें. दिल्ली मेडिकल एसोसिएशन के पूर्व अध्यक्ष डॉ. अनिल बंसल ने बताया कि इस मौसम में हमेशा हल्के, खुले सूती कपड़े पहनें, जो त्वचा से चिपके नहीं. कपड़े बार-बार बदलें. एंटी-फंगल पाउडर का इस्तेमाल करें. अगर फंगल इंफेक्शन हो जाए तो वह एक दिन की दवाई से ठीक नहीं होता, लंबी दवाई करनी पड़ती है, इसलिए धैर्य रखें.

स्केबीज/खाज : यह इंफेक्शन बहुत सूक्ष्म कीटाणुओं से होता है, जो सूर्य की रोशनी में ज़्यादा सक्रिय नहीं होते. मानसून में वर्षा के कारण सूर्य की रोशनी कम होती है. ये कीटाणु ज़्यादातर बिस्तर में रहते हैं और रात को परेशान करते हैं. स्केबीज की बैक्टीरीयल इंफेक्शन से पूरे शरीर में खारिश होती है. ज़्यादा खुजलाने से यह छिल जाता है और फिर घाव बन जाता है और पस निकलने लगता है. इसके साथ ही खुजली भी होती रहती है. यह इंफेक्शन आमतौर से अंगुलियों और इसके बीच की जगह में हो जाता है. डॉ. बंसल ने बताया यह छूत की बीमारी है, जो एक से दूसरे व्यक्ति में तेज़ी से फैलता है. इस वजह से परिवार के किसी भी एक सदस्य को खाज होने पर केवल रोगी को ही नहीं बल्कि परिवार के सभी सदस्यों को सावधानी बरतने की ज़रूरत होती है. इसका उपचार एंटी-स्केबीज तेल है जो डाक्टरी परामर्श से लगाना पड़ता है. इसके अलावा इसके बचाव में यह ध्यान रखें कि रोगी के कमरे और घरभर में धूप आनी चाहिए, कपड़ों को उबाल कर, धोकर धूप में ही सुखाने चाहिए. यदि इनमें एक भी कीटाणु बचता है तो खाज के फिर से पूरे परिवार में फैलने की संभावना होती है.

फोड़े-फुंसी : त्वचा के पोषक तत्वों पर जीने वाला दूसरा परजीवी बैक्टीरिया है. यह मानसून के मौसम में बहुत ज़्यादा सक्रिय हो जाता है. इससे शरीर में फोड़े-फुंसी हो जाते हैं. यह सामान्य तौर पर पसीना नहीं सूखने की वजह से होता है. इसमें बुखार के साथ खुजली होती है और शरीर में फोड़े-फुंसी निकल आते हैं जिनमें से पस भी निकलने लगता है. यह छोटे बच्चों में सबसे ज़्यादा और आसानी से होता है, इसलिए इस मौसम में बच्चों को सूती व हल्के कपड़े पहनाने चाहिए. साथ ही उनकी नियमित साफ-सफाई रखें, दिन में दो बार अवश्य नहलाएं और कपड़े बार-बार बदलें. इससे बचने का सबसे उपयुक्त तरीक़ा सफाई और एंटीसेप्टिक साबुन का इस्तेमाल है. फोड़े-फुंसी के थोड़े भी निशान दिखने पर तुरंत डाक्टर को दिखा कर एंटीबायटिक लें, अपने आप इसका उपचार करने की कोशिश न करें.

घमौरियां : बारिश के मौसम में तेज़ धूप में जाने से और हवा से पसीना न सूखने पर घमौरियां हो जाती हैं. ये छोटे-छोटे सरसों के दाने जैसे पूरे शरीर पर निकल आते हैं. ऐसे में तेज़ धूप से बचना चाहिए. बचाव के लिए लैक्टो कैलामाइन लोशन लगाएं. इससे बचने के लिए सबसे उपयुक्त मिट्टी का लेप लगाना होता है. घमौरियां हो जाने पर प्रिकली-हीट पाउडर लगाएं.

कंजंक्टीवाइटिस : यह मौसम आंखों के लिए भी परेशानी लेकर आता है. कंजंक्टीवाइटिस या आंख आना एक वाइरल बीमारी है, जो एक से दूसरे व्यक्ति में जाती है. यह संक्रामक रोग है जो कई बार महामारी के रूप में फैल जाता है. इससे बचने के लिए सफाई का ध्यान रखना जरूरी है. अपने हाथ को बार-बार साफ करें, आंख को ठंडे पानी से धोएं, आंख पोछने के लिए हमेशा साफ रूमाल का इस्तेमाल करें. किसी प्रकार की जलन, परेशानी होने पर आंखों को आराम पहुंचाने के लिए वीटामीटाजोन या कोई भी स्टीरॉयड का प्रयोग बिना डॉक्टरी सलाह के न करें. अनावश्यक तौर पर स्टीरॉयड का प्रयोग करने से कंजंक्टीवाइटिस होने का ख़तरा रहता है.

फूड पॉयजनिंग : इस मौसम में कोई भी खाद्य-सामग्री ख़ासकर आलू की चीज़ें बहुत जल्दी ख़राब होती हैं, क्योंकि इस मौसम में नमी होती है और बैक्टीरिया बिल्कुल खुले में घूम रहे होते हैं, ऐसे में खुला और बासी खाना बिल्कुल ना खाएं. इससे अंत्रषोध, उल्टी, दस्त, फूड पॉयजनिंग हो सकती है. बारिश में पानी को उबाल कर पीना भी ज़रूरी है क्योंकि कई हालात में नाली, सीवर इत्यादि का गंदा पानी पीने के पानी में मिल जाता है और इसे गंदा कर देता है.

मानसून नहीं देखता उम्र : मानसून हर उम्र के लोगों को अलग-अलग तरीक़े से परेशान करता है. यह त्वचा को ढीला कर देता है और इसका प्राकृतिक मॉयस्चर ख़त्म होने पर त्वचा शुष्क हो जाती है, जिससे खुजलाहट होने लगती है. ऐसे में मानसून में पानीरहित मॉयस्चराइज़र लगाना ज़रूरी होता है, वरना इंफेक्शन आसानी से हो जाता है.

मानसून के मौसम में देखभाल

1. त्वचा को प्रतिदिन साफ करें. साथ ही नहाते वक़्त फोम से या सूती कपड़े से रगड़ें, इससे त्वचा पर जमीं मृत कोशिकाओं की परत हटेगी.
2. फल-सब्ज़ियां पानी में उबाल कर खाएं जिससे इनमें मौजूद हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाएं. प्रतिदिन 8 से 10 ग्लास पानी उबालकर, ठंडा करके पीएं.
3. हाथ- पैर की उंगलियों के नाख़ून ठीक तरीक़े से नियमित रूप से साफ करें.
4. हफ़्ते में एक बार एंटीसेप्टिक लिक्विड की कुछ बूंदे पानी में डालकर इसमें 15-20 मिनट तक के लिए पांव डालें.
5. अपने खाने में दूध, सोया, नट्स और दूध के पदार्थ शामिल करें जिससे बाल स्वस्थ रहें.

ritika.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

शांत हो गया किराना घराने का सुर

किसी का चले जाना, पूरे युग के चले जाने सा लगे, ऐसा अक्सर नहीं होता. लेकिन गंगूबाई हंगल का जाना सच में भारतीय संगीत से एक युग का चले जाना है. एक युग, जिसकी उम्र 97 साल थी.

अपने संगीत के ज़रिए आधी सदी से भी अधिक समय तक श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करती रहीं हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की जानी-मानी गायिका गंगूबाई हंगल का 21 जुलाई को निधन हो गया. छाती में जकड़न और ख़ून की कमी से पीड़ित गंगूबाई की हालत अचानक बिगड़ गई, जिसके बाद उन्हें जीवन रक्षक प्रणाली पर रखा गया था. लेकिन सुबह सात बजकर दस मिनट पर उन्होंने आख़िरी सांस ले ही ली. उन्हें बचाने के सारे प्रयास धरे रह गए.

गंगूबाई हंगल भारतीय संगीत के सबसे गौरवमय युग और परंपरा की प्रतिनिधि थीं. किराना घराने की धरोहर को ऊंचाइयों तक पहुंचाने वाली गंगूबाई हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की सबसे बड़ी हस्तियों में थीं. आधी सदी से अधिक की अपनी संगीत यात्रा में गंगूबाई ने कई मिथक तोड़े, कई बंधन खोल दिए और भारतीय संगीत के परिदृश्य पर सूरज की तरह चमकीं. 97 वर्षीया गंगूबाई हंगल की कहानी एक साधारण लड़की लगती असाधारण कलाकार के संगीत के शिखर तक पहुंचने के संघर्ष से भरे रास्ते की अनूठी कहानी है. गंगूबाई का यह संघर्ष अपने परिवार की कमज़ोर आर्थिक स्थिति, ताना मारते पड़ोसियों और संगीत व भूख के बीच की एक सतत लड़ाई का संघर्ष था. लेकिन इससे भी ज़्यादा यह एक ऐसी महिला का संघर्ष था, जिसकी मंज़िल के रास्ते में उसका नारी होना ही सबसे बड़ी बाधा रही.

स्मृति शेष : गंगूबाई हंगल (1913-2009)

गानेवाली-यह नाम गंगूबाई को उन लोगों ने दिया था जिनकी नज़रों में संगीत एक ओछा पेशा था. एक महिला के लिए संगीत की साधना करना उस समय की सामाजिक व्यवस्था को मंज़ूर न था. ताने मारने वालों, चिढ़ाने वालों की कमी न थी. नियति का फेर देखिए कि जब गंगूबाई संगीत की ऊंचाइयों तक पहुंचीं तो यही गानेवाली का संबोधन उनकी गरिमामय पहचान बना. कर्नाटक के एक छोटे से गांव हंगल के एक नाविक परिवार में जन्मीं गंगूबाई को बचपन से ही संगीत से लगाव था. दरअसल संगीत मां के दूध में घुला-मिला था. मां अंबाबाई को कर्नाटक संगीत में रुचि थी, लेकिन जब गंगूबाई ने हिंदुस्तानी को अपना माध्यम बनाने का फ़ैसला किया तो मां ने अपनी शैली की तिलांजलि दे दी. बेटी को संगीत सिखाने के लिए उसे हिंदुस्तानी संगीत के सबसे बड़े गुरुओं में से एक एच कृष्णाचार्य के पास भेजा. फिर गंगूबाई कुंडगोल जाने लगीं-किराना घराने के गुरु रामभाऊ कुंडगोलकर यानी सवाई गंधर्व से सीखने. राह आसान न थी. एक मल्लाह परिवार की लड़की को संगीत सीखने जाते देख लोग रास्ते में ताने मारते, गानेवाली कहकर हंसी उड़ाते. गंगूबाई के लिए यह सब कोई मायने नहीं रखता था, उन्हें तो अपनी ज़िंदगी का रास्ता मिल गया था. सवाई गंधर्व जैसे गुरु और भीमसेन जोशी जैसे सहपाठियों के बीच वह संगीत साधना में रम गई थीं. तीस किलोमीटर की रेल यात्रा और फिर लंबी दूरी तक पैदल चलकर वह गुरुकुल पहुंचतीं. वर्षों बाद अपने गुरु को याद करते हुए, गंगूबाई ने कहा -मेरे गुरुजी ने मुझे सिखाया कि सुर ऐसे लगाओ जैसे कोई कंजूस अपना पैसा ख़र्च करता है, ताकि सुननेवाले को हर सुर की महत्ता और ख़ूबसूरती का अहसास हो सके.

उनकी प्रतिभा को पहचान चुके गुरु गंधर्व ने उनकी कम परीक्षा नहीं ली. गंगूबाई को दिन भर एक ही पाल्टा यानी पंक्ति को गाने का अभ्यास करना पड़ता. कभी-कभी तो गंगूबाई को कोफ़्त सी हो जाती, लेकिन आगे चलकर यही अभ्यास उनके लिए मददगार रहा. गंगूबाई ने किराना घराने के अंदाज़ को बख़ूबी बनाए रखा. घराने की पहचान बन चुके संगीत का उच्च स्तर और ख़ूबसूरती तो गंगूबाई की आवाज़ में सुनते ही बनती थी. उनकी कमज़ोर, दुबली-पतली काया और उनकी सशक्त आवाज़ का मेल सुनने वालों को हैरान कर देता. गंगूबाई ने एक बार बताया था कि किस तरह कोलकाता में एक समारोह से पहले उन्हें अकेले में अलग से गाने को कहा गया, ताकि आयोजक उनकी आवाज़ से संतुष्ट हो जाएं. अपनी गहरी ज़ोरदार आवाज़ में जब गंगूबाई भैरवी, आशावरी, तोरी जैसे राग सुनातीं तो सुननेवाले मंत्रमुग्ध हो जाते. संगीत जगत में लोग उन्हें सम्मान से बाईजी पुकारते थे. पद्म भूषण, पद्म विभूषण और संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार सहित अनेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित गंगूबाई ने अपनी सुरीली आवाज़ से छह दशकों से भी अधिक समय तक संगीतप्रेमियों को सम्मोहित रखा.

जितना ख़ूबसूरत गंगूबाई का संगीत था, उतना ही विशेष उनका जीवन भी. उनकी मां एक अद्भुत महिला थीं और शायद वही गुण उनकी बेटी में आए. एक दलित पिछड़े परिवार की होने बावजूद उनकी मां ने ब्राह्मण से शादी की. कभी पति के उपनाम का इस्तेमाल नहीं किया. इस परंपरा को गंगूबाई ने भी ज़िंदा रखा. गंगूबाई के पति आजीवन बेरोज़गार रहे और गंगूबाई की कमाई हुई हर पाई गंवाते रहे. बावजूद इसके, उनके प्रति गंगूबाई का प्रेम मिसाल रहा. अंतिम वक़्त में उनके साथ न होने का दुख गंगूबाई को सालता रहा.

गंगूबाई की आवाज़ कई बार दवा जैसी प्राणदायक लगती थी. सिद्धेश्वरी देवी जब लकवे का शिकार होकर बिस्तर पर पड़ी थीं, तब उनसे मिलने गई गंगूबाई से उन्होंने भैरवी सुनाने का आग्रह किया और आंखों से बहते आंसुओं के साथ उनको सुनती रहीं.

गंगूबाई हंगल आज नहीं रहीं, लेकिन उन्होंने वह समय देखा, जब सालाना अखिल भारतीय संगीत समारोहों में देश के सारे संगीत दिग्गज एक साथ जुटते थे. वह वक़्त भी देखा, जब फिल्म के बड़े सितारे शास्त्रीय गायकों का ऑटोग्राफ मांगा करते थे. जनता की भीड़ शास्त्रीय संगीत सुनने के लिए जुटा करती थी.

वह अपने पीछे दो पुत्र नारायण राव और बाबू राव को छोड़ गई हैं. उन्हें एक पुत्री कृष्णा हंगल भी थीं. पुत्री का निधन हो जाने से उन्हें भारी धक्का लगा था. जिस तरह गंगूबाई को संगीत मां से विरासत में मिला था, उसी तरह उन्होंने भी अपनी पुत्री को शास्त्रीय संगीत में पारंगत किया था. पुत्री को लेकर उन्होंने बड़े-बड़े सपने देखे थे, लेकिन ऊपर वाला इस मामले में बड़ी निर्दयता से पेश आया. अब उनके परिवार का कहना है कि उनकी पौत्रवधू वीणा और अर्चना उनकी संगीत विरासत को आगे बढ़ाएंगी.

हिन्दुस्तानी संगीत में कई अनूठे प्रयोग किए. सबसे शानदार तो उनका ध्रुपद में हाथ आजमाना रहा. गंगूबाई के गुरुभाई भीमसेन जोशी आज ध्रुपद और किराना घराने के आख़िरी स्तंभ बचे हैं. वह भी काफी बीमार चल रहे हैं. बहरहाल, गुरु सवाई गंधर्व जब भीमसेन जोशी को ध्रुपद में रियाज कराते, तो गंगूबाई भी बैठ जाती थीं. कहना न होगा कि ध्रुपद को गायिकाओं के लिए कभी उपयुक्त नहीं माना गया. फिर भी वह ध्रुपद का भी अभ्यास करतीं. एक बार उन्होंने कहा भी था कि ध्रुपद की वजह से सुर और ताल का एक अलग तरह का उन्हें ज्ञान हुआ.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

राशिफल

(27 जुलाई से 2 अगस्त तक)

मेष 21 मार्च से 20 अप्रैल

किसी कार्य को शुरू करने से पहले उसके लाभ-हानि के बारे में सोच-विचार कर लें. रोज़गार के क्षेत्र में अवसर प्राप्त होंगे, जिसमें आपको वांछित सफलता मिलने की संभावना बनी हुई है. शासन सत्ता का सहयोग भी मिलेगा. आमोद-प्रमोद के सुखद अवसर भी मिलेंगे.

वृष 21 अप्रैल से 20 मई

फ़िज़ूलख़र्ची को नियंत्रित करें. पारिवारिक स्तर पर अगर कोई प्रयास कर रहे हैं तो उसमें सफलता मिलेगी. किसी कार्यवश यात्रा भी करनी पड़ सकती है. समय अनुकूल है, इसलिए अगर कोई नया काम करेंगे तो उसमें सफलता और लाभ निश्चित है.

मिथुन 21 मई से 20 जून

अपनी भावनाओं पर नियत्रंण बनाए रखें. छोटी-छोटी बातों को आगे न बढ़ाएं, क्योंकि ये आपके लिए हानिकारक हो सकती हैं. साथ ही पद, प्रतिष्ठा के क्षेत्र में अगर मेहनत कर रहें तो उसमें सफलता ज़रूर मिलेगी. व्यावसायिक क्षेत्र में रुकावट आने की आशंका हैं, इसलिए सावधानी बरतें.

कर्क 21 जून से 20 जुलाई

कार्यस्थल पर मित्रों का सहयोग मिलेगा. अपने कामों के ज़रिए जानने वालों से सराहना प्राप्त करेंगे. साथ ही समाज में प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी. परिवार में किसी बुज़ुर्ग का सहयोग मिलेगा. कुछ ऐसा काम न करें, जिसकी वजह से आपको बाद में परेशानी झेलनी पड़ जाए. सावधानी बरतें.

सिंह 21 जुलाई से 20 अगस्त

दांपत्य जीवन में संभाल कर क़दम बढ़ाएं, क्योंकि ज़रा सी चूक से अनबन बढ़ सकती है. इसलिए मतभेद वाले मुद्दों पर बच कर चलना ही अच्छा रहेगा. आप निजी कार्यों में इस सप्ताह काफी व्यस्त रहेंगे. फ़िज़ूलख़र्ची करने और बेकार के कामों को करने से बचें. जीवनसाथी का पूरा सहयोग प्राप्त होगा.

कन्या 21 अगस्त से 20 सितंबर

आप अगर यात्रा करने जा रहे हैं तो अपने सामान और स्वास्थ्य का ध्यान अवश्य रखें. ईश्वर के प्रति आस्था बढ़ेगी. आर्थिक मामलों में चल रहे प्रयास सफल होंगे. साथ ही व्यावसायिक क्षेत्र में कर्मचारियों को लेकर समस्या की स्थिति आ सकती हैं.

तुला 21 सितंबर से 20 अक्तूबर

रोज़गार के क्षेत्र में अगर प्रयास कर रहें हैं तो उसमें सफलता मिलेगी. संतान के दायित्व की पूर्ति होगी. आपकी किसी बात से ख़ुश परिवार के किसी बुज़ुर्ग सदस्य से तोहफा भी मिल सकता है. पारिवारिक और व्यावसायिक दृष्टि से चल रहे काम में सफलता प्राप्त होगी.

वृश्चिक 21 अक्तूबर से 20 नवंबर

आपका वह कार्य पूरा हो जाएगा, जो काफी लंबे समय से अटका हुआ था. अपनी उपलब्धियों से संतुष्ट रहेंगे. वर्तमान समय हर लिहाज़ से अनुकूल और सुखद परिणाम देने वाला है. इसलिए इसका पूरा लाभ उठाएं. वैसे संतान के कारण चिंता में पड़ सकते हैं.

धनु 21 नवंबर से 20 दिसंबर

स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं पैदा हो सकती हैं. डॉक्टर से परामर्श ज़रूर करें, नहीं तो दिक़्क़त हो सकती है. अकारण ही मन तनावग्रस्त रहेगा. उपहार व सम्मान का लाभ भी प्राप्त होगा. पुत्री के विवाह के लिए किए जा रहे प्रयास सार्थक परिणाम देंगे. किसी मांगलिक कार्य में शामिल हो सकते हैं.

मकर 21 दिसंबर से 20 जनवरी

किसी कार्य को हाथ में लेने से पहले उसके हानि-लाभ पर अच्छी तरह विचार अवश्य कर लें. पारिवारिक दायित्व की पूर्ति होगी. व्यावसायिक क्षेत्र में अगर आप लोहे से संबंधित कार्य करने के लिए इच्छुक हैं तो बेझिझक आरंभ करें, क्योंकि उसमें सफलता मिलने की पूरी संभावना है.

कुंभ 21 जनवरी से 20 फरवरी

शासन सत्ता का सहयोग तो मिलेगा, लेकिन कुछ ऐसा व्यर्थ का काम न करें जिसकी वजह से आपको परेशानी का सामना करना पड़े. अपनेपन का भरपूर अहसास रहेगा. ख़ुशी की बात यह है कि आपकी आमदनी बढ़ सकती है. आर्थिक योजनाओं में सफलता प्राप्त होगी.

मीन 21 फरवरी से 20 मार्च

किसी पर अधिक विश्वास न करें. किसी से धोखा मिल सकता है. किसी को अपशब्द न कहें, क्योंकि विवाद की स्थिति उत्पन्न होने की आशंका बनी हुई हैं. अगर आप दूसरों से कोई अपना कार्य कराएंगे तो उसमें आपको निश्चय ही सफलता मिलेगी. धनागम का नया मार्ग बनेगा.

ज्योतिषाचार्य पं. सुदर्शन

मेरी दुनिया.... महंगाई का विकास ...धीर

पार्टनर ! तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है ?

अनंत विजय

हिंदी के जादुई यथार्थवादी कहानीकार उदय प्रकाश इन दिनों फिर से विवादों में घिरे हैं. विवाद की जड़ में है– पांच जुलाई को गोरखपुर में गोरक्षपीठ के कर्ताधर्ता और बीजेपी सांसद योगी आदित्यनाथ के हाथों पहला नरेंद्र स्मृति सम्मान लेना. जबसे यह ख़बर छपी है, पूरे साहित्य जगत में उदय की जमकर आलोचना शुरू हो गई है. उदय प्रकाश सार्वजनिक जीवन में कई दशकों से वामपंथी आदर्शों की दुहाई देते रहे हैं, लेकिन इस सम्मान ग्रहण के बाद उनके चेहरे का लाल रंग धुंधला होकर भगवा हो गया है. दरअसल उदय को नज़दीक से जानने वालों का दावा है कि वह हमेशा से अवसरवादी रहे हैं और जब भी, जहां भी मौका मिला है उन्होंने इसे साबित भी किया है. परिस्थितियों के अनुसार उदय अपनी प्राथमिकताएं और प्रतिबद्धताएं तय करते हैं और एक रणनीति के तहत उस पर अमल भी करते हैं .

अगर मेरी स्मृति मेरा साथ दे रही है तो उदय प्रकाश ने अपने संग्रह– सुनो कारीगर– को लगभग दर्जन भर साहित्यकारों को समर्पित किया था. इनमें नामवर भी थे और काशीनाथ सिंह भी और नंदकिशोर नवल भी थे और भारत भारद्वाज भी. ज़ाहिर तौर पर यह एक साथ दर्जन भर से अधिक साहित्यकारों/आलोचकों को साधने की कोशिश थी. बाद में जब शिवनारायण सिंह संस्कृति मंत्रालय में थे तो उनको भी अपना एक कविता संग्रह समर्पित कर दिया. संयोगवश उसी वक़्त उदय को मंत्रालय की फेलोशिप भी मिली. इसके अलावा उदय प्रकाश भारत भवन की पत्रिका *पूर्वग्रह* से भी जुड़े रहे हैं. यह वही समय था, जब अशोक वाजपेयी मध्य प्रदेश में साहित्य और संस्कृति के कर्ताधर्ता हुआ करते थे. हालांकि, जब किसी वजह से वह *पूर्वग्रह* से बाहर हुए तो अशोक वाजपेयी और उनकी मित्रमंडली को भारत भवन के अल्सेशियंस तक कह डाला था. उसके बाद से अशोक और उदय साहित्य के दो अलग–अलग छोर पर रहे. हालांकि, वाजपेयी के पिछले जन्मदिन पर उदय ने जिस अंदाज़ में शुभकामनाएं अर्पित कीं, तो उसके बाद ही दोनों के बीच जमी बर्फ पिघली और एक मुलाक़ात के बाद उदय को लखटकिया वैद सम्मान मिला. यह है उदय की प्राथमिकता और प्रतिबद्धता की कहानी.

बीजेपी सांसद और कट्टर हिंदुत्ववाद के स्वयंभू मसीहा योगी आदित्यनाथ के हाथों सम्मान ग्रहण करने के बाद जब उदय पर चौतरफा हमले शुरू हुए तो अपने बचाव में उन्होंने बेहद लचर तर्कों का सहारा लिया– एक नियोजित तरीक़े से मुझ पर आक्रमण करके बदनाम करने की घृणित जातिवादी राजनीति की जा रही है. दरअसल इस हिंदू जातिवादी समाज में विचारधाराओं से लेकर राजनीति व साहित्य का जैसा छद्म और चतुर खेल खेला गया है, उसके हम सब शिकार हैं. मेरे परिवार में यह सच है कि कोई भी एक सदस्य ऐसा नहीं है (इनमें मेरी पत्नी, बच्ची, बहू और पोता तक शामिल हैं और मेरे मित्र तथा पाठक भी) जो किसी एक धर्म, क्षेत्र, जाति, नस्ल आदि से जुड़े हों. हालांकि, हिंदी साहित्य और ब्लॉगिंग में सक्रिय सवर्ण हिंदू उसी कट्टर वर्णाश्रम–व्यवस्थावदी माइंडसेट से प्रभावित पूर्व आधुनिक सामंती, अनपढ़ और

घटिया लोग हैं–जिनके भीतर जैन, बौद्ध, नाथ, सिद्ध, ईसाइयत, दलित, इस्लाम आदि तमाम आस्थाओं और आइडेंटिटीज़ के प्रति घृणा और द्वेष है. इसे वे भरसक ऊपर–ऊपर छिपाए रखने की चतुराई करते रहते हैं. मैंने जीवनभर इनका दंश और ज़हर झेला है और अभी भी झेल रहा हूं.

अपनी लंबी सफाई के अंत में धमकाने के अंदाज़ में सवर्ण लुटेरों के साम्राज्य को ध्वस्त करने का दावा भी करते हैं. उदय पर पहले भी जब–जब उनकी व्यक्तिवादी कहानियों को लेकर उंगली उठी थी तो किसी को मथुरा का पंडा, तो किसी को घनघोर अनपढ़ घोषित किया और किसी को अफसर होकर साहित्य की दुनिया में अनधिकार प्रवेश के लिए लताड़ा. इसके पहले जब *वर्तमान साहित्य* के मई 2001 के अंक में उपेंद्र कुमार की कहानी *झूठ का मूठ* छपी थी तो अच्छा ख़ासा विवाद खड़ा हो गया था. उस वक़्त भी सफाई देते हुए उदय प्रकाश ने कहा था– दरअसल ऐसा है कि दिल्ली में गृह मंत्रालय के भ्रष्ट अधिकारियों का एक क्लब है जो नाइट पार्टी का आयोजन करता है. इसमें शराब पी जाती है और अश्लील चर्चा होती है. जो इसमें शामिल नहीं होता है, ये लोग उसपर हमला करते हैं. ये साहित्येतर लोग हैं जो अमेरिकी साम्राज्यवाद का विरोध तो करते हैं मगर गली–मोहल्ले के मवालियों के साथ बैठकर शराब पीते हैं. ज़ाहिर है, उदय प्रकाश की जब भी आलोचना होती है तो वह बिफर जाते हैं. रविभूषण ने जब इनकी कहानी पर विदेशी लेखकों की छाया की बात की थी तो मामला क़ानूनी दांव–पेंच में भी उलझा था.

बीजेपी सांसद के हाथों सम्मानित होकर इस बार उदय बुरी तरह फंसते नज़र आ रहे हैं. उदय की सफाई के बाद हिंदी के दो दर्जन से ज़्यादा महत्वपूर्ण साहित्यकारों ने अपने हस्ताक्षर से एक बयान जारी कर उदय की भर्त्सना की. बयान जारी करने वालों में प्रमुख नाम हैं–ज्ञानरंजन, विद्यासागर नौटियाल, विष्णु खरे, भागवत रावत, मैनेजर पांडे, राजेंद्र कुमार, इब्बार रब्बी, मदन कश्यप, देवीप्रसाद मिश्र इत्यादि. चौतरफा घिरता देख उदय प्रकाश ने एक बार फिर से अपने ब्लॉग पर एक सफाई लिखी, लेकिन ये सफाई कम धमकी ज़्यादा है. इसके बाद उदय प्रकाश की ओर से ब्लॉग चलाने वाले पत्रकार अविनाश ने मोर्चा संभाला और *जनसत्ता* में *और अंत में घृणा* के नाम से एक लेख लिखकर उदय की दलीलों को आगे बढाया. उदय के समर्थन में उतरे अविनाश के तर्क भी उतने ही लचर हैं जितने उनके अंतरराष्ट्रीय ख्याति के प्रिय रचनाकार की. तर्क पर ग़ौर फरमाइए– जिन नरेंद्र जी की स्मृति में उदय प्रकाश को योगी ने सम्मानित किया, वह उदय प्रकाश के फुफेरे भाई थे. दोनों में तीन दशकों की वैचारिक दूरी थी, जो हर मुलाकात में बहसों की शक्ल लेकर परिवार वालों का जीना दूभर करती रही थी. एक बरस पहले कुंवर नरेंद्र की मृत्यु के बाद की शोकाकुल स्थितियों में उदय प्रकाश उपस्थित नहीं हो सके . लेकिन पहली बरसी पर वह गए. इस बरसी में वे भी मौजूद थे, जो कुंवर साहब की जीवन की छटाओं में बिखरे थे. योगी भी इसलिए आए. लेकिन उस वक़्त उदय प्रकाश अपनी मौजूदगी के राजनीतिक अर्थ नहीं निकाल पाए. अबोध बने रहे. अब अविनाश को कौन बताए कि उदय प्रकाश को वह जितने अबोध समझ रहे हैं या साबित करना चाह रहे हैं, वह उतने अबोध हैं नहीं. मृत्यु के मौके पर न जाकर बरसी पर जाना और सम्मानित होना भी मंशा पर सवाल उठाता ही है. हालांकि अविनाश ने एक काम तो यह किया ही कि जो विवाद ब्लॉग तक सीमित था उसे अख़बार में उजागर कर दिया. उदय प्रकाश एक बेहतर कवि हो सकते हैं, संभव है कि कहानियां भी उन्होंने अच्छी लिखी हों, लेकिन उनकी कहानियां व्यक्तियों पर केंद्रित होकर लोगों को दुखी करती रही हैं. जब उपेंद्र कुमार की कहानी *झूठ का मूठ* छपी थी तो उस पर पटना से प्रकाशित *प्रभात खबर* में एक लंबी परिचर्चा छपी थी. इसमें सुधीश पचौरी ने लिखा था–अरसे से हिंदी कथा लेखन में एक न्यूरोटिक लेखक कई लेखकों को अपने मनोविक्षिप्त उपहास का पात्र बनाता आ रहा था. पहले उसने एक महत्वपूर्ण कवि की जीवनगत असफलताओं को अपनी एक कहानी में सार्वजनिक मज़ाक का विषय बनाया. फिर वामपंथी गीतकार की असफल प्रेमकथा का सैडिस्टिक उपहास करने के लिए कहानी लिखी. किसी ने रोका नहीं, तो जोश में कई हिंदी अध्यापकों और आलोचकों के निजी जीवन पर कीचड़ उछालने वाली शैली में कविताएं भी लिख डाली. किसी दीक्षित मनोविक्षिप्त की तरह उसने समझा कि उसे सबको शिकार करने का लाइसेंस हासिल हो गया है. उसके शिकारों में से एक गीतकार तो आत्महत्या तक कर बैठा. हिंदी के कई पाठक उसकी आत्महत्या के पीछे का कारण इस सैडिज्म को भी मानते हैं. यह लेखक दरअसल स्वयं एक माचोसैडिस्ट है जो दूसरों को अपने मर्दवादी परपीड़क विक्षेप में जलील करता और सताता आया है. यह पहली कहानी है जिसने एक दुष्ट शिकारी का सरेआम शिकार किया है. शठ को शठता से ही सबक़ दिया है. संयोग ऐसा कि तब *प्रभात खबर* के साहित्य पेज के प्रभारी अविनाश ही थे. उदय प्रकाश की राजनीति और जोड़–तोड़ और दंद–फंद को समझना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन भी है. बस मुक्तिबोध की पंक्ति याद की जा सकती है– पार्टनर ! तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है?

feedback.chauthiduniya@gmail.com

समय के साथ बदल जाते हैं देवी-देवता

व्यालोक

सनातन धर्म में 33 करोड़ देवी–देवता तो हैं ही, साथ ही देवताओं और देवियों के रूप–रंग, रंग–ढंग और प्रकृति भी समय के साथ–साथ बदलते रहते हैं. दुनिया की शुरुआत और अंत विशुद्ध तौर पर एक प्राकृतिक घटना है. विज्ञान इसे ही महाविस्फोट और एटॉमिक रिएक्शन वग़ैरह के नाम से जानता है.

हम इंसान ही थे, जिन्होंने ईश्वर को बनाया. सच पूछा जाए तो ईश्वर और कुछ नहीं, हमारे अंदर के भय, आदर और अचीन्हे तत्वों का ही संयोग है. इसके अलावा और कुछ नहीं. इस बात पर हम विस्तार से बता चुके हैं, इसलिए यहां इस बार की बात. आख़िर इसकी वजह क्या है कि सनातन धर्म के अलग–अलग देवी–देवता एक–दूसरे से इतने भिन्न दिखते हैं? इसका जवाब और कुछ नहीं, भारतवर्ष की सामासिक संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था में सबको जगह देने की कोशिश और समय के साथ बदलती धार्मिक प्रवृत्ति है.

आप ख़ुद ही सोचिए कि दक्षिण भारत के देवताओं (या देवियों) की मूर्तियां उत्तर भारत से इस कदर भिन्न कैसे होती हैं? आख़िर शिव क्यों काले हैं, और विष्णु गौर वर्ण के? शिव के भक्तों में भूत, पिशाच, यक्ष वग़ैरह क्यों हैं, वह नंग–धड़ंग क्यों रहते हैं और मृगचर्म क्यों पहनते हैं? इसके उलट राम, कृष्ण, विष्णु, इंद्र वग़ैरह देवता इतने शुभ्र, धवल और स्वच्छ क्यों दिखते हैं? आख़िर किसलिए वेदों की ऋचाओं में जिन भी देवताओं का उल्लेख है, वे सभी किसी न किसी प्राकृतिक तत्व के अधिकारी और शासक हैं? उदाहरण के लिए, आग के लिए अग्नि, जल के लिए वरुण या मृत्यु के लिए यम इत्यादि.

जवाब खोजना इतना मुश्किल नहीं है. वैदिक काल में मनुष्य ने प्रकृति के रहस्यों को नहीं जाना था. उसके लिए ये तत्व रहस्य और उत्सुकता का सबब थे. इसी वजह से उसने सभी अनजाने प्राकृतिक तत्वों के लिए एक देवता या देवी खोज लिया. ठीक इसी तरह, देवताओं के रंग का भिन्न होना विशुद्ध रूप से भौगोलिक कारण पर आधारित है. दक्षिण की जलवायु ऐसी है कि अमूमन वहां के लोग श्यामवर्ण के और थोड़े स्वस्थ होते हैं तो उत्तर भारत के लोग गौर वर्ण के और छरहरे होते हैं. इसीलिए दक्षिण के देवता भी श्यामवर्ण के और थोड़े थुलथुल, जबकि उत्तर भारत के देवता गौर वर्ण के और छरहरे होते हैं. यहां आर्य और द्रविड़ के झगड़े को भी उठाया जा सकता है, लेकिन हमारा वह विषय नहीं. उस पर चर्चा फिर कभी.

ठीक यही मसला, मांसाहार और शाकाहार के संदर्भ में भी उठाया जा सकता है. आज सनातन धर्म में शाकाहार पर ख़ासा ज़ोर दिया जाता है. क्या हम इस बात को नकार सकते हैं कि राम से लेकर कृष्ण तक सभी देवता आखेटक थे? और शिकार अगर वे करते थे, तो क्या उसको आहार नहीं बनाया जाता था? आख़िर सीता का अपहरण किस वजह से हुआ? स्वर्णमृग की वजह से ही तो! और, दशरथ को शाप किस वजह से मिला था? श्रवण कुमार की हत्या भी तो शिकार के ही चक्कर में हुई थी, जब दशरथ ने शब्दवेधी बाण से उनको जानवर समझकर मार गिराया था. इसी वजह से अंततः उनको राम का विछोह भी झेलना पड़ा था. दरअसल, यह सारा कुछ मानव विकास से संबंधित है. हम मांसाहार करते थे और इसे वेदों से लेकर हमारे और भी मानक धर्मग्रंथ पुष्ट करते हैं. धीरे–धीरे हमने खेती सीखी और मानव जाति का संक्रमण मांसाहार से शाकाहार की ओर हुआ. यहां तक कि हमारी शारीरिक संरचना भी मांसाहार को ही पुष्ट करती है, वरना मनुष्य के केनाइन दांत होने का कोई मतलब ही नहीं था. खेती सीखने से लेकर बौद्ध धर्म के विकास तक हमारा समाज मांसाहार से शाकाहार की ओर प्रवृत्त हुआ और कालांतर में तो यह इतना अहम हो गया कि इसके ही आधार पर सवर्ण और अवर्ण का भी निर्धारण होने लगा.

अंत में, कहने का मतलब केवल यह कि देवी–देवता के भिन्न होने से लेकर शाकाहार और मांसाहार की बहस तक, सनातन धर्म का विकास सामाजिक विकास और बदलाव के बरक्स हुआ है. इसका मतलब यह कतई नहीं कि हम मांसाहार को बढ़ावा दे रहे हैं. हम तो केवल संक्रमण की गाथा बता रहे हैं. सनातन धर्म के विकास पर हमारी चर्चा जारी रहेगी.

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि सूफ़ी किस तरह चीनी कैप्टन द्वारा मालवाहक जहाज़ में चोरी–छिपे लाई जाने वाली शराब की बोतलें उतारने लगा. अब आगे पढ़िए...

मुसलमान

स्पष्ट ना कहते हुए उसने चौंका देने वाला सत्य उजागर किया, जिस तरह रशीद परकार का गैंग ज़मीन पर धंधा करता था, उसी तरह कैप्टन के गैंग ने पानी पर व्यापार शुरू किया था. हक़ीक़त में कैप्टन और उसके कर्मचारी इसमें पार्टनर थे. मुनाफ़े का पचास प्रतिशत अपने पास रखकर बाक़ी के रुपये वह ख़लासियां में बराबर–बराबर बांट देता. इसके अलावा यह धंधा बिना पूंजी–निवेश का था.

(तस्करी का कारोबार आज भी ज़ुबान पर चलता है. इसमें न कोई लिखा–पढ़ी होती है, न कोई गारंटी. फिर भी भूले–भटके किसी साथी की नीयत बिगड़ जाए और वह दग़ा करे तो उसे मुंह छिपाने के लिए जगह तक न मिले. वह पाताल में भी लपका हो तो वहां से उसे खोज कर उड़ा दिया जाता है.)

हांगकांग के शिप का चीनी कैप्टन शराब की 175 पेटियां इसी विश्वास पर लेकर बंबई आया था. यहां शराब की पेटियां उतारकर वह चांदी की ईंटें लेगा. इन चांदी की ईंटों को वह भारी मुनाफ़े के साथ दुबई में बेचेगा और वहां से वह जापानी कपड़ा ख़रीदेगा.

शिप फिर आगे बढ़ेगा. मोम्बासा या दारेसलाम उसका अगल स्टॉप होगा. यहां वह जापानी कपड़ा बेचकर लौंग उठाएगा. उसका मुनाफ़ा फिर बढ़ेगा. वहां से वापस लौटते समय वह बंबई के घाट पर एक मुक़ाम और करेगा. यहां लौंग का माल उतारकर उसके बदले अफ़ीम लेगा.

हांगकांग में अफ़ीम की मांग बहुत है. वहां अफ़ीम बेचकर बिना पूंजी के इस धंधे में वह कितना कमाएगा, इसकी कल्पना इसी से की जा सकती है कि दो महीने के एक फेरे में शिप का कप्तान दो वर्ष का अपना वेतन निकाल चुका होता है. कैप्टन का एक महीने का वेतन लगभग पच्चीस हज़ार रुपये होता है. इस हिसाब से उसकी कमाई छह लाख रुपये हुई.

एक अंतिम प्रश्न. अंत में मैंने पूछा, शुरुआत में आपने बताया कि हांगकांग के शिप पर लदे माल में कॉमन–ब्रांड की बोतलें थीं. मैं जानना चाहता हूं कि यह कॉमन–ब्रांड क्या होता है?

इसमें एक ही ग्रेड और एक ही भाव का माल होता है, सूफ़ी कह रहा था, इस सौदे में रेड लेबल, जॉनी वाकर, व्हाइट हॉर्स, ब्लैक एंड व्हाइट और वेट सिक्सटी नाइन नाम की व्हिस्की की बोतलें थीं.

मेरे सवाल पूरे होने पर उसने अपनी जीवन–कथा आगे बढ़ाई. कैप्टन की देख–रेख में शिप के ख़लासी मछेरों के जाल जैसे विशाल थैले में एक दर्ज़न पेटियां भरकर डोरी के साथ नीचे सरकाने लगे.

स्टीम लांच शिप से सटकर खड़ी थी. रशीद परकार के साथ इक़बाल लांच के छपरे पर खड़ा था. बाक़ी के आदमी नीचे तैनात हो गए थे. काम तेज़ी से और फुर्ती के साथ अदा करना था.

जैसे ही जाल सिर पर आया, इक़बाल और रशीद ने उसे खींचकर छपरे पर ले लिया. तुरंत दोनों काम में जुट गए. दोनों ने एक–एक पेटी उठाकर नीचे खड़े आदमियों को थमाई. उन्होंने दूसरे दो साथियों को दी. इस तरह शराब की बोतलों से भरी पेटियां अलग–अलग हाथों से गुजरती हुई तहख़ाने में खड़े अंतिम दो साथी तक पहुंची, जिन्हें उन दोनों ने सलीक़े से रख दिया.

पहला लॉट पूरा होते ही रशीद ने पहले से तैयार रखी पेटी जाल पर रखी (इस पेटी में चांदी की ईंटें थीं). इक़बाल ने डोरी हिलाई. थोड़ी ही देर में जाल ऊपर खींच लिया गया.

माल के साथ जाल नीचे आए, इससे पहले कड़ाके के साथ फिर बिजली चमकी और वर्षा शुरू हो गई.

शहर की वर्षा तथा खुले समुद्र की वर्षा में बड़ा फ़र्क़ होता है. शहर में वर्षा का हमला रोकने के लिए आसपास ऊंचे–ऊंचे मकान होते हैं, जिससे पानी का आधा ज़ोर टूट जाता है. यहां बीच समुद्र में न पवन को रोकने वाली कोई बाधा थी, न बारिश को. अलबत्ता लांच की एक तरफ़ दीवार बनकर शिप खड़ा था. पर तूफ़ान का ज़ोर उससे उलटी दिशा में था.

लांच डांवाडोल होने लगी. तीनों टंडेल (खिवैये) शिप की बाहरी दीवार पर बांस दबाकर लांच को सुरक्षित रखने का पूरा प्रयास कर रहे थे. छपरे पर खड़े इक़बाल और रशीद बुरी तरह भीग रहे थे. शरीर का संतुलन बनाए रखने के लिए भरसक कोशिश कर रहे थे. उसी समय दूसरे लॉट के साथ जाल नीचे आया. पेटियां निकालने और उन्हें नीचे खड़े आदमियों को पास करने का क्रम फिर शुरू हुआ. पर अब यह काम उतना सरल नहीं था.

पहला लॉट पूरा होते ही रशीद ने पहले से तैयार रखी पेटी जाल पर रखी (इस पेटी में चांदी की ईंटें थीं). इक़बाल ने डोरी हिलाई. थोड़ी ही देर में जाल ऊपर खींच लिया गया. माल के साथ जाल नीचे आए, इससे पहले कड़ाके के साथ फिर बिजली चमकी और वर्षा शुरू हो गई. शहर की वर्षा तथा खुले समुद्र की वर्षा में बड़ा फ़र्क़ होता है.

प्रचंड वेग से बहते पवन के साथ आने वाली वर्षा की बौछारों में खुली छतरी की तरह उड़ कर समुद्र में फिंका जाने का भय बढ़ता जा रहा था. दोनों जन मानो क़ुदरत से टक्कर ले रहे थे, पूरी सावधानी के साथ काम निपटा रहे थे.

पांचवी लॉट आने पर रशीद को छींके आनी शुरू हो गईं. छपरे पर ही घुटनों के बल बैठ जाते हुए उसने एक पेटी खोली. अंदर से जो बोलत हाथ लगी, उसे निकालकर खोल डाला. एक चौथाई बोतल नीट गटक लेने के बाद उसके शरीर में थोड़ी देर के लिए चुस्ती आ गई.

ले! फिर खड़े होते हुए उसने बोतल इक़बाल के सामने बढ़ा दी. दो घूंट तू भी पी ले.

इक़बाल ने स्वीकार नहीं किया.

वह दहाड़ा, साले मैं बोलता हूं. पी ले वरना यहीं मर जाएगा.

अपने पानी चूते बालों को आंखों के सामने से हटाते हुए इक़बाल ने उत्तर दिया, इस्लाम ने शराब को हराम ठहराया है.

तो दवा समझकर पी ले, यार.

इक़बाल टस से मस न हुआ. रशीद ने भी ज़िद नहीं की. उसने और दो घूंट ली और खुली पेटी साथियों को नीचे भेंट दे दी. वे ख़ुशी से झूम उठे.

वर्षा तथा हवाओं के इस तूफ़ान में टिके रहने के लिए एक–एक आदमी के लिए एक–एक बोतल काफ़ी थी. दो से तीन घंटे तक काम आने वाली थी. रात एक बजे शुरू हुआ काम लगभग सूर्योदय तक चलने वाला था. अभी रात के सिर्फ़ दो बजे थे.

तूफ़ान को चुनौती देते इक़बाल तथा रशीद शिप के छपरे पर उलझे थे. रशीद अब काम कम कर रहा था और पी अधिक रहा था. उसकी छींकें थोड़े समय पहले बंद हो गई थीं. इक़बाल को कंपकंपी शुरू हो गई.

एक घंटे तक लगातार वह भीगा था, अभी भी बर्फ के तीरों–सी हवा और वर्षा के चांटे खा रहा था. साथ ही ख़ुद को सौंपे हुए काम को निष्ठापूर्वक करता जा रहा था.

जाल ख़ाली होने पर उसने डोरी हिलाई. डोरी के साथ जाल ऊपर खिंच गया. वह चेहरा उठाकर ऊपर देखने लगा और नशे में चूर रशीद अपना संतुलन खोकर अचानक उस पर चढ़ आया. लांच के छपरे पर वह चित्त ढह गया. उसके ऊपर रशीद गिरा. अभी भी उसने एक हाथ में बोतल जकड़ रखी थी.

जैसे कुछ हुआ न हो, इस तरह उसने बोतल इक़बाल के मुंह पर झुकाई, मैंने बोला पी यानी पीने का. नशे में वह ज़िद करने लगा.

इक़बाल ने पड़े–पड़े ही दाहिने हाथ से झटका मारकर बोतल उड़ा दी. रशीद तिलमिला उठा, पर दूसरे ही क्षण वह शांत हो गया. धीरे–धीरे दोनों फिर खड़े हो गए.

डावांडोल होती नाव पर संतुलन रखकर खड़ा रहना, अब रशीद के लिए संभव नहीं था. जैसे अभी थोड़ा होश बाक़ी हो, उसने क़बूल कर लिया, यार मेरे कू चढ़ गई है.

जाल नए लॉट के साथ फिर नीचे आया. इक़बाल ने फ़ौरन हाथ बढ़ाकर छपरे पर ले लिया. इस बीच रशीद नीचे चला गया था.

दूसरे दो घंटे तक इक़बाल निपट अकेला लांच के छपरे पर तूफ़ान से जूझता रहा, भीगकर कांपता रहा, लगातार बरसते पानी में भीगता रहा. माल उतारता रहा. आख़िरी लॉट उसने छपरे पर लिया तो उस समय चार बज चुके थे.

काम पूरा होने पर वह छपरे पर से सरककर नीचे आया और वहीं ढेर हो गया.

(अगले अंक में जारी)

दुनिया

तकनीक के डर से न उड़े रातों की नींद

आॅरकुट, फेसबुक, बिगअड्डा, ब्लॉगर, ट्विटर...क्या ये नाम आपके लिए डरावने हैं? क्या आपको अपने मोबाइल फोन से चिढ़ आती है? क्या आप अपने पुराने डीवीडी प्लेयर को सिर्फ़ इसलिए झेल रहे हैं, क्योंकि आपको लगता है कि नए प्लेयर्स में बहुत ज़्यादा फीचर्स हैं? आप क्या कंप्यूटर का इस्तेमाल महज़ अपने काम की वजह से करते हैं? क्या आप तकनीकी शब्दों से ख़ौफ़ खाते हैं? अगर इन सवालों के जवाब आपने हां में दिए हैं तो ज़रा संभल जाइए. हो सकता है कि आप एक ख़ास तरह की बीमारी के शिकार हों. यह बीमारी है तकनीक के डर की, जिसे वैज्ञानिक भाषा में कहते हैं- टेक्नोफोबिया.

वैसे तो हमारे आसपास कई लोग हैं जो तकनीक से चिढ़ते हैं. इसके ज़्यादा इस्तेमाल को ग़लत मानते हैं, लेकिन ज़रूरी नहीं कि उनमें से हर कोई ही टेक्नोफोबिक हो. हालांकि, जब तकनीक का डर एक हद से ज़्यादा हो और किसी के व्यवहार पर या उसके काम पर असर डालने लगे तो साफ तौर पर यह टेक्नोफोबिया के लक्षण हैं. टेक्नोलॉजी का डर दरअसल हर इंसान के अंदर होता है. हममें से अधिकतर लोग नए परिवर्तनों से डरते हैं, लेकिन धीरे-धीरे उन्हें अपना लेते हैं. हर नई तकनीक भी इसी तरह का नया परिवर्तन होती है और इसलिए हम उससे भी घबराते हैं लेकिन हम में से कुछ के लिए यह घबराहट बहुत बड़ी बन जाती है. यहीं से टेक्नोफोबिया की शुरुआत होती है. नवीन सिंह चौहान मनोविज्ञान के छात्र हैं और अपनी डाक्टरेट रिसर्च में तकनीक के इसी डर पर शोध कर रहे हैं.

वह बताते हैं कि दरअसल किसी भी तरह का डर एक मानसिक समस्या है. आज के समय में जब तकनीक के बिना किसी का काम नहीं चलता, तकनीक से डरने वालों को बड़ी समस्या होती है. इस वजह से उन्हें अपनी ज़िंदगी और करियर में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है.

सबसे बड़ी बात है कि ऐसे लोगों को यह अंदाज़ा भी नहीं होता कि उन्हें कोई समस्या है और वे अपने इस डर को अपने तकनीक के दूर रहने के जिद्दीपन के पीछे छुपाते हैं. वे तकनीक को पूरी तरह से नकार देते हैं और इसे समझना ही नहीं चाहते, इस वजह से वे और पिछड़ जाते हैं. लोगों को उनका व्यवहार

अजीब लगता है और उन्हें समझना और मुश्किल हो जाता है. आम तौर पर तो टेक्नोफोबिया को एक बेकार का डर माना जाता है लेकिन किसी-किसी के लिए यह डर जायज़ भी होता है. सुनने में लगता है कि तकनीक के डर यानी टेक्नोफोबिया की यह समस्या 20वीं सदी के तकनीकी विकास की पैदाइश है. हालांकि टेक्नोफोबिया की जड़ें तकनीक के पैदा होने के समय से मौजूद हैं. जब यूरोप में इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन हुआ तो मशीनों ने कई लोगों का काम संभाल लिया, ऐसे में कई लोग बेरोज़गार हो गए. इन लोगों के मन में इन मशीनों और तकनीक का डर बैठ गया और यहीं से टेक्नोफोबिया की शुरुआत हुई.

टेक्नोफोबिया का सबसे ख़तरनाक दौर था द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का समय, इस युद्ध में लड़ाई की बेजोड़ तकनीकें इस्तेमाल हुईं थीं, युद्ध में नर्व गैसों का प्रयोग हुआ था. करोड़ों जानें गईं थीं. एक पूरी जेनरेशन को तकनीक ने बर्बाद कर दिया था. तकनीक से डर का माहौल बन चुका था. कई लोग तकनीक के इस कहर से इतने डरे की गहरे टेक्नोफोबिक डिप्रेसन में चले गए.

इसी तरह जब कंप्यूटर जेनरेशन आई तो कई लोगों को इससे तालमेल बैठाने में दिक़्क़त हुई. 1992-94 में जब कंप्यूटर क्रांति चरम पर थी तो मानव व्यवहार और कंप्यूटर पर दुनिया भर में एक सर्वे कराया गया. उसके नतीज़े चौंकाने वाले थे, जापान जैसे तकनीकी रूप से आगे माने जाने वाले देश में क़रीब 60 फ़ीसदी युवा टेक्नोफोबिया के शिकार थे.

भारत में यह आंकड़ा 82 फ़ीसदी था. टेक्नोफोबिया एक मानसिक स्थिति है, जिसे समझना बहुत ज़रूरी है. बिना इसे समझे-जाने इसका हल नहीं ढूंढा जा सकता, और इसे छुपाना तो और भी ख़तरनाक है. आज की दुनिया तकनीक के पहियों पर दौड़ती है और इससे क़दम मिलाने के लिए हर किसी को इनपर सवार होना होता है. टेक्नोफोबिक लोगों को इसमें दिक़्क़त तो आएगी ही लेकिन सही काउंसलिंग और बेहतर एप्रोच से इससे निपटा जा सकता है. ज़रूरत है कि इस डर को समझा जाए क्योंकि इसी से इसे ख़त्म किया जा सकता है. जैसा कि फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने कहा था कि हमें सिर्फ़ एक ही चीज़ से डरना चाहिए- डर से.

जेट सेट गो, सैमसंग

एक ज़माना था, जब किसी के पास सेलफोन होना ही बहुत बड़ी बात होती थी. लेकिन अब ज़माना बदल गया है. अब महज़ आम सेलफोन से काम नहीं चलता. अब तो फोन भी स्मार्ट होने चाहिए. इस वजह से बाज़ार में स्मार्ट फोनों की बाढ़ सी आ गई है. हालांकि इन स्मार्ट फोनों के फीचर्स की भीड़ के बीच भी कभी-कभी पुराने फोनों की सरलता याद आ ही जाती है.

इसी सोच से अब सैमसंग लेकर आया है अपना नया स्मार्ट फोन-सैमसंग जेट. इसमें स्मार्ट फोनों के उन्नत फीचर्स के साथ-साथ सामान्य फोनों सी सहजता का मेल किया गया है. सिंगापुर में पहले ही लांच हो चुके सैमसंग जेट को अब भारतीय बाज़ारों में भी उतारा गया है. सैमसंग जेट में मल्टी-टास्क मैनेजर और माइक्रोसॉफ्ट एक्सचेंड एक्टिवसिंक जैसी आधुनिक स्मार्ट फोन सुविधाएं हैं. इसमें सुविधाजनक यूजर

इंटरफेस है, जिससे पुश ई-मेल जैसी सुविधाएं और आसान हो जाती हैं. यह ई-मेल का ज़्यादा इस्तेमाल करने वाले यूजर्स, ख़ासकर कारोबारियों के लिए बड़े काम की चीज़ है. इसके अलावा दूसरे फीचर्स में 3.1 डब्ल्यूवीजीए, एएमओएलईडी (अमोल्ड) टचस्क्रीन डिसप्ले, कई डेस्कटॉप के साथ 3-डी जैसे यूजर इंटरफेस (यू आई) ख़ासकर मोशन यू आई, ड्यूअल एलईडी के साथ 5 मेगापिक्सल एएफ कैमरा, 3-डी मीडियागेट शामिल हैं. सैमसंग जेट के साथ फेस एंज ब्लिंक डिटेक्शन (कैमरा अपने आप चेहरे को फोकस बना लेता है), स्माईल शॉट और जिओटैगिंग की सुविधाएं पहले से ही जुड़ी हुईं हैं. अपने फोन पर संगीत सुनना पसंद करने वालों के लिए इसमें डीएनएसई साउंड इंज़िन और एसआरएस वॉओ इफेक्ट हैं, साथ ही 3.5 एमएम इयरफोन सॉकेट भी. वीडियो चलाने के लिए डिवएक्स और एक्सवीडी प्लेबैक के विकल्प उपलब्ध हैं. साथ ही इसमें ब्ल्यूटूथ 2.1 के साथ माइक्रो यूएसबी और 3-जी जैसी चीजें तो हैं ही. इसके अलावा इसमें वेब ब्राउजिंग करते समय वेबपेजों को बड़ा करने का ख़ास तरीक़े का फीचर है. यह डॉल्फिन फिंगर ज़ूम के द्वारा किया जा सकता है. इसमें सिर्फ़ एक अंगुली की मदद से पेज को बड़ा कर सकते हैं, ऐसी सुविधा फ़िलहाल किसी फोन में नहीं है. इससे चलते-चलते या बस-ट्रेनों में मोबाइल से वेब ब्राउज करने वालों को काफी मदद मिलेगी. इस फोन की सबसे बड़ी ख़ासियत यह है कि इतनी सुविधाओं के बावजूद इसे इस्तेमाल करना मुश्किल नहीं है, यानी कोई सामान्य यूज़र भी बिना परेशानी इसके फीचर्स का फ़ायदा उठा सकता है.

मानसून में भी लें मेकअप का मज़ा

मानसून में बाहर निकलते समय मेकअप की चिंता सबसे अधिक रहती है. निकलने से पहले सोचना ही पड़ता है कि कहीं बरसात पूरे किए-धरे पर पानी न फेर दे. इसलिए इस मौसम में मेकअप संबंधी एहतियात बरतने की बहुत ज़रूरत होती है. एक बात और कि मौसम के मिज़ाज को देखकर मेकअप के अंदाज़ ही नहीं, रंगत भी बदल जाती हैं. आइए, हम बताते हैं मानसून में मेकअप करने और उसे पानी से बचाए रखने के टिप्स-

- फाउंडेशन के बजाय फेस पाउडर लगाना अधिक समझदारी होगी. आंखों के लिए इस्तेमाल होने वाले सामान जैसे आईलाइनर या मस्कारा वग़ैरह के लिए वाटरप्रूफ रेंज बाज़ार में मिलती हैं. इससे आपका मनचाहा मेकअप भी हो जाएगा और रिमझिम फुहारों का मज़ा भी बिना किसी टेंशन के ले सकेंगी.
- मानसून में बालों का भी ख़ास ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं बाल ख़राब न हो जाएं. इन दिनों बालों में जैल इत्यादि का प्रयोग न करें, क्योंकि इस मौसम में जुएं और डैंड्रफ होने की आशंका अधिक रहती है. बेहतर होगा कि गुनगुने तेल की मालिश करें. जिनके लंबे बाल हों, वे बालों को बांधकर कर रखें तो अच्छा रहेगा.

कुछ उपयोगी मंत्र

जहां तक संभव हो प्राकृतिक पेय पदार्थ, जैसे गुलाब और फलों का रस पीएं. इससे त्वचा दमकती रहेगी. एक गिलास पानी में बर्फ डालें. फिर उसमें शहद, नींबू और पुदीने की पत्तियां डालकर पीएं.

- तरबूज के रस में बर्फ, नींबू और गुलाब जल मिलाकर पीएं.
- दिन में कम से कम 8-10 गिलास पानी अवश्य पीएं.
- अगर नेल पॉलिश जल्दी सुखानी है, तो उसे लगाने के बाद हाथों को 20 सेकंड तक एकदम ठंडे पानी में डुबोकर रखें. इससे वह जल्दी सूख जाएगी.
- अगर आपकी नेल पॉलिश गाढ़ी हो गई हो, तो शीशी को हल्के गर्म पानी में 15-20 मिनट डुबोकर रखने से वह पतली हो जाएगी.

मुर्ग़ियों को खिलाना हुआ आसान

मुर्ग़ी पालन क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए अच्छी ख़बर यह है कि उन्हें अब मुर्ग़े और मुर्ग़ियों को दाना-पानी देने के लिए ज़्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ेगी. इसका मतलब यह नहीं है कि आपको बिल्कुल ही काम नहीं करना पड़ेगा. काम तो करना ही होगा, लेकिन पहले की अपेक्षा कम. क्योंकि दशमेश इंडस्ट्री ने मुर्ग़ी पालन व्यवसाय से जुड़े लोगों की परेशानी को देखते हुए एक ऐसा पिंजरा बनाया है, जो विभिन्न खानों (कठघरे) में बांटा हुआ है और काफी मज़बूत है. इसे लगाने के बाद इस व्यवसाय से जुड़े लोगों को काफी फ़ायदा होगा.

इस व्यवसाय से जुड़े लोगों के लिए दशमेश इंडस्ट्रीज ने एक ख़ास पिंजरा तैयार किया है, जिससे न सिर्फ़ मुर्ग़ियों को विभिन्न खानों में आसानी से दाना-पानी पहुंचाया जा सकता है, बल्कि कम जगह में आप ज़्यादा से ज़्यादा मुर्ग़ी भी रख सकते हैं. इससे जगह के साथ-साथ समय भी बचेगा और मुनाफ़ा तो होगा ही. दशमेश इंडस्ट्रीज द्वारा बनाए गए इस पिंजरे में सुविधा ही सुविधा है. इसमें बिना बिजली से संचालित होने वाला फीडिंग सिस्टम, वाटर सिस्टम, लेयर कैग्स, ग्रोअर कैग्स के साथ ही विभिन्न तरह की मशीन और यंत्र हैं. इसकी सबसे बड़ी ख़ासियत ऑटोमेटिक फीडिंग सिस्टम और वाटर सिस्टम है. इसमें दाना और पानी देने के बाद यह विभिन्न खानों में ऑटोमेटिक पहुंच जाता है. बस आपको ऑटोमेटिक फीडिंग सिस्टम और वाटर सिस्टम में दाना-पानी देने की ज़रूरत है. एक स्टडी के मुताबिक मुर्ग़ियों को खाना देते समय क़रीब पांच फ़ीसदी खाना बर्बाद हो जाता है, लेकिन ऑटोमेटिक फीडिंग सिस्टम लगाकर आप इस बर्बादी को आसानी से रोक सकते हैं. इतना ही नहीं, सारे खाने में इससे दाना भी समान रूप से पहुंचता है. वैसे तो बीस हज़ार मुर्ग़ियों को खिलाने के लिए चार लोगों की ज़रूरत पड़ती है, लेकिन इसे लगाने के बाद महज़ दो लोगों की आवश्यकता होती है. यानी इसे लगाने के बाद श्रम की बचत तो होगी ही, साथ ही समय भी बचेगा. इस खाने के चारों तरफ़ जालीनुमा दीवार लगी रहती है, जिससे मुर्ग़े और मुर्ग़ियां बाहर नहीं निकल सकते. इसके चलते वे बिल्ली और दूसरे जीवों से भी सुरक्षित रहते हैं. यह काफी किफ़ायती और फ़ायदेमंद है. इसे हैंडल करने के लिए बिजली की ज़रूरत नहीं पड़ती है. इसे मैन्युअली हैंडल किया जाता है. तो है न फ़ायदे वाली बात.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अब चीते सा तेज़ होगा आपका हार्ड-ड्राइव

हार्ड-ड्राइव यानी किसी भी कंप्यूटर का सबसे अहम हिस्सा. हार्ड-ड्राइव कंप्यूटर के लिए शरीर जैसा होता है, जिस पर उसकी बुनियाद खड़ी होती है. ज़ाहिर है, किसी कंप्यूटर के अच्छे होने के लिए उसके हार्ड-ड्राइव का सबसे अच्छा होना बेहद ज़रूरी है. हार्ड-ड्राइव बनाने वाली अग्रणी कंपनी सीगेट ने अपने नए हार्ड-ड्राइव चीता 15के.7 एंटरप्राइज रेंज को बाज़ार में उतारा है. 3.5 इंच का यह हार्ड-ड्राइव अपनी श्रेणी में सबसे भरोसेमंद है. कंपनी ने चीता 15के.7 में 600 जीबी प्वाइंट तक की 1500 आरपीएम ड्राइव पेश की है, जो 16 लाख

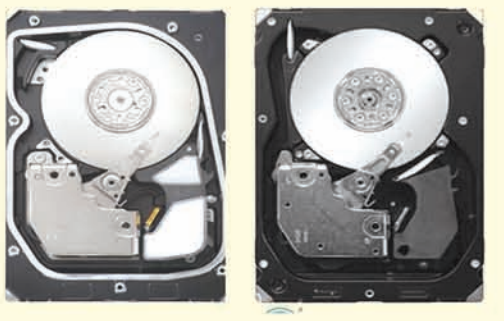

घंटे एमटीबीएफ का भरोसा दिलाती है. चीता 15के.7 ड्राइव दो इंटरफेसों में उपलब्ध है. यह 6 जीबी प्रति सेकेंड एसएएस और 4 जीबी प्रति सेकेंड एफसी के इंटरफेसों में उपलब्ध है. साथ ही बिजली की कम खपत के लिए इसमें सीगेट ने अपनी ख़ास पावर-ट्रिम तकनीक का भी इस्तेमाल किया है. कंपनी इस हार्ड-ड्राइव से छोटे कारोबारियों और मध्यवर्गीय उपभोक्ताओं को टारगेट करना चाहती है. कंपनी का दावा है कि चीता 15के.7 में छोटे कारोबारियों की ज़रूरतों का ख़ास ध्यान रखा गया है. ख़ासकर ऐसे कारोबारी, जो अपना कारोबार फैला रहे हैं, उन्हें इस प्रोडक्ट से काफी फ़ायदा होगा. अब सीगेट का यह हार्ड-ड्राइव बाज़ार के खेल में सच में चीता साबित होता है या नहीं, यह तो वक़्त ही बताएगा. हां, फ़िलहाल तो कंपनी को अपने चीता 15के.7 की सफलता का पूरा भरोसा है.

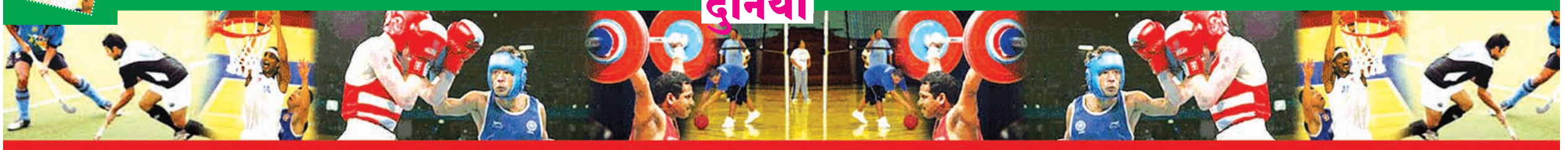

शर्म हमको मगर नहीं आती

दिल्ली के नेशनल स्टेडियम की उस तस्वीर को जेहन से मिटा पाना संभव नहीं है. शायद उस समय हिंदी न्यूज़ चैनलों में ब्रेकिंग न्यूज़ का इस तरह पागलपन नहीं था, वरना वह तस्वीर हर चैनल की सुर्ख़ी बनती. राष्ट्रीय कैंप का नज़ारा था. एक ड्रम में पानी भरा रखा था, जिसमें ऊपर से बर्फ डाली गई थी. बर्फ के टुकड़ों के बीच घास तैर रही थी. धनराज पिल्लई अभ्यास करते हुए आए. प्लास्टिक के ग्लास से पानी भरा. बग़ैर मुंह से लगाए पिया और फिर साथ दिखे एक-दो पत्रकारों के बीच मुखातिब हुए- पीजिए, पानी पीजिए, गर्मी बहुत है. समझ नहीं आ रहा था कि इसके लिए कैसे हां या न की जाए. लेकिन वहां अभ्यास कर रहे खिलाड़ियों के लिए कुछ भी अलग नहीं था. इनके लिए यह बड़ी आम बात थी.

तस्वीर बदलती है. दिल्ली में ही बॉक्सिंग चैंपियनशिप चल रही था. एक बड़ी देगची में सब्ज़ी या दाल जैसी चीज़ रखी हुई थी. हर मुक्केबाज़ वहां रखी कड़छी से खुले हुए बर्तन में रखे उस पदार्थ को अपनी प्लेट में डालता था. वहां एक कमरा था, जिसमें दरवाज़ा नहीं था. मुक्केबाज़ों के लिए वही ड्रेसिंग रूम था. दर्शक बड़े आराम से अंदर वस्त्रहीन मुक्केबाज़ों के दर्शन कर सकते थे. ये उनके लिए भी शर्मनाक होने चाहिए थे, लेकिन जब एक मुक्केबाज़ ने कहा कि वे तो इसके आदी हैं, तो उसके बाद किसी के लिए कुछ कहना-सुनना बाक़ी नहीं रह गया.

एक तस्वीर और है. इसे महसूस करने की कोशिश कीजिए. यह दिल्ली के ही जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम की है. कमरा है. इसमें क़रीब आठ-नौ लोग हैं. पंखा लगा है, जो किसी तरह चलने की औपचारिकता पूरी कर रहा है. चारपाइयां हैं, जिन पर ओलंपियन लेटे हुए हैं. मानो इससे बेहतर कोई जगह ही नहीं हो. पानी के लिए लाइन लगी है, क्योंकि कई दिन से पानी नहीं आया है. यह जुलाई की तस्वीर है, जब गर्मी और उमस अपने शबाब पर होते हैं. स्टेडियम की कैंटीन के हालात बताता एक एथलीट अपने हाथ में पकड़ा ग्लास आगे करता है. उसमें दूध है. लेकिन उसे पानी में कुछ दूध मिला हुआ बता सकते हैं.

ये सारी तस्वीरें ऐसी हैं, जो भारतीय खेलों की सच्चाई हैं. लेकिन अफसोस कि ये सारी ख़बरें किसी न्यूज़ चैनल को शर्मसार नहीं करतीं. जो चैनल मुक्केबाज़ रेणु गोरा के चाय पिलाने पर बेहद शर्मिंदा दिखाई देते हैं, उनके लिए किसी बलजीत सिंह की आंख चली जाना ख़बर नहीं होती, क्योंकि इससे टीआरपी नहीं आती. ये सारी खेल जगत की देखी-अनदेखी तस्वीरें हैं और इनमें हम सब शामिल हैं. हम सब शोक जताते हैं कि ऐसा नहीं होना चाहिए. लेकिन चंद दिन बाद भूल भी जाते हैं. याद कीजिए महिला हॉकी टीम की वह तस्वीर, जहां सभी खिलाड़ी बाल्टी लिए पानी की लाइन में लगी हैं. इस तस्वीर ने जैसे हाहाकार मचा दिया था. लेकिन इससे कुछ समय बाद टूर्नामेंट में खेलने जा रही टीम की खिलाड़ी उन दवाओं के लिए, जो आधिकारिक तौर पर मिलनी चाहिए, बाज़ार में घूमती नज़र आती हैं. सिर्फ़ इसलिए क्योंकि भारतीय खेल प्राधिकरण (साई) की तरफ़ से दवाएं नहीं दी जातीं. उन्हीं खिलाड़ियों के कैंप में गेंद लगने से हेलमेट टूटता है और वाइजर गोलकीपर की आंख में घुस जाता है. लेकिन यह दुर्घटना चंद लाइन की ख़बर भर बनकर रह जाती है.

भारतीय खेलों का जो हाल है, वह वाकई बेहद ख़राब, शर्मनाक और हौलनाक है. लेकिन सवाल यही है कि क्या हम शर्मिंदा होते हैं? या इस ख़बर के बाद वापस देखने लगते हैं कि *दस का दम* में इरफान पठान ने शिल्पा शेट्टी के साथ कैसे फ्लर्ट किया? इस तस्वीर के बाद हम शर्मसार होने वाली तस्वीरों को भूल जाते हैं. चाय पिलाती रेणु गोरा की एक तस्वीर छपती है और उनका बयान आता है. लेकिन अगले दिन से इसके सिर्फ़ और सिर्फ़ खंडन की ख़बरें आती हैं. जहां यह बताया जाता है कि हम तो घर की तरह यह काम कर रहे थे. बॉक्सिंग से जुड़ा हर अधिकारी यही दलील दे रहा है. खेल से जुड़े कुछ बड़े प्रशिक्षकों का मानना है कि इस तरह की ख़बरें करके हम खेल का भला नहीं, बुरा कर रहे हैं. उनका कहना है कि मानसिक तौर पर खिलाड़ी को सब कुछ करने के लिए तैयार रहना चाहिए. उसे बताया जाना चाहिए कि यह सब कितना ज़रूरी है. ठीक वैसे ही, जैसे क्रिकेट में ड्रिंक्स इंटरवल के दौरान खिलाड़ी पानी लेकर आता है- अपने साथियों के लिए. लेकिन यह प्रशिक्षण का ऐसा हिस्सा होना चाहिए कि किसी को शर्मिंदगी न हो.

विदेशों में भी गोरान इवानिसेविच जैसे खिलाड़ी विंबलडन जीतने के बाद अपने मुल्क जाते हैं और फौज के लिए वे सारे काम करते हैं, जो कोई भी आम फौजी करता है. न उन्हें कोई शर्म आती है और न ही उनके मुल्क क्रोएशिया के लोगों को. क्योंकि उनके यहां यह जीवन का हिस्सा है. यहां समस्या यह है कि हम इस तरह के कामों को जीवन का हिस्सा नहीं बनाते. हम खिलाड़ियों से जबरदस्ती करते हैं. बजाय इसके कि उन्हें बताया जाए कि कुछ काम भले ही खेल से जुड़े न हों, लेकिन खिलाड़ी की ज़िंदगी के लिए ज़रूरी हैं. तब शायद चाय पिलाना मेहमाननवाजी का प्रतीक बन जाए, इसमें शर्म की गुंजाइश न हो. लेकिन ऐसा होता नहीं है. फेडरेशन के लोग चाहते हैं कि खिलाड़ी उनके पांवों को हाथ लगाएं. वे उनके साथ कुर्सी पर न बैठें. उनकी आंख में आंख डालकर जवाब न दें. इसीलिए वे हर बार बताने की कोशिश करते हैं कि आप लोग हमसे छोटे हो. इसी के चलते इस तरह की तस्वीरें आती हैं. जिस पर मीडिया एक-दो रोज़ का तमाशा खड़ा करने के बाद ख़ामोश बैठ जाता है. फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता है, जो भारतीय खेलों की शर्मनाक तस्वीरें पेश करता है.

राकेश चतुर्वेदी
feedback.chauthiduniya@gmail.com

अब अमेरिका में भी ट्वेंटी-20 क्रिकेट!

बेसबॉल और बास्केटबॉल की सरज़मीं पर जल्द ही ट्वेंटी-20 क्रिकेट देखने को मिलेगा. यूएसए प्रीमियर लीग इसे हक़ीक़त में बदलने में जुट गया है. यूएसए क्रिकेट एसोसिएशन (यूएसएसीए) ने यूएसए प्रीमियर लीग बनाने के लिए प्रस्ताव मांगे हैं. इसके ज़रिए अमेरिका में भी अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट को लाने की मंशा है. ताकि इस सिलसिले में यहां के विशाल और समृद्ध बाज़ार का भरपूर इस्तेमाल किया जा सके. ख़बरों के मुताबिक इसके लिए प्रस्ताव बड़े प्रसारणकर्ताओं , आयोजकों और प्रायोजकों से मांगे गए हैं. प्रस्ताव भेजने की अंतिम तारीख़ सात अगस्त रखी गई है. अमेरिका में क्रिकेट की लोकप्रियता का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि क्रिकेट को लेकर टीवी के ज़रिए कमाई के मामले में भारत के बाद दूसरा नंबर इसी का है. यहां तक कि क्रिकेट के संदर्भ में वह दूसरा सबसे बड़ा इंटरनेट मार्केट भी है. यूएसएसीए के कमर्शियल एडवाइजर निगेल रशमैन ने कहा कि क्रिकेट वास्तव में वैश्विक खेल है, जिसे मीडिया में विकास के साथ और भी बढ़ावा मिला है. इसका उदाहरण दक्षिण अफ़्रीका में आईपीएल का सफल आयोजन है. उन्होंने कहा कि हमें विश्वास है कि, सही साझीदारों के साथ अमेरिका विश्व स्तरीय प्रीमियर लीग का मेजबानी कर सकता है. उसे देखने के लिए जहां मैदान दर्शकों से खचाखच भरेंगे, वहीं ऑनलाइन भी यह बड़े पैमाने पर देखा जाएगा. अमेरिका में खेल के भविष्य के लिए यह बहुत अच्छी बात है. दुनिया भर में इस खेल का विस्तार होगा, सो अलग. ग़ौरतलब है कि इससे पहले अमेरिकन प्रीमियर लीग शुरू करने की योजना बनी थी, लेकिन अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट काउंसिल (आईसीसी) ने निजी तौर पर आयोजित की जाने वाली उस लीग को मंज़ूरी नहीं दी. उस योजना के खटाई में पड़ जाने के बाद यह एक नई कोशिश की गई है. अब देखना है कि अमेरिका में क्रिकेट की शुरुआत हो भी पाती है या नहीं.

धरी रह गई कंगारुओं की चालाकी

भारतीय टेनिस ने एक और मोर्चा फतह कर लिया है. हालांकि यह जीत किसी भारतीय टेनिस खिलाड़ी को नहीं मिली है. हमने कोई ग्रैंड स्लैम नहीं जीता है, न ही डेविस कप में कोई जीत दर्ज़ की है. यह जीत तो बिना मैच खेले मिली है, लेकिन इस जीत के मायने भी कम नहीं हैं. अंतरराष्ट्रीय टेनिस महासंघ ने आस्ट्रेलिया के ख़िलाफ़ अगले डेविस कप मुक़ाबलों की मेजबानी भारत को सौंपी है. इस फ़ैसले को अखिल भारतीय टेनिस संघ की जीत कहा जा सकता है, क्योंकि आस्ट्रेलिया ने इस साल मई में सुरक्षा कारणों से भारत में टीम भेजने से इंकार कर दिया था. लेकिन अंतरराष्ट्रीय टेनिस फेडरेशन (आईटीएफ) निदेशक मंडल ने आईटीएफ डेविस कप समिति के ख़िलाफ़ एशियन टेनिस एसोसिएशन (एटा) की अपील मंज़ूर कर ली. निदेशकों ने भारत की अपील पर ग़ौर करने के बाद चेन्नई को सुरक्षित बताया और अब आस्ट्रेलिया को वहां खेलना ही होगा. निदेशकों ने डेविस कप समिति के फ़ैसले को बदलकर भारत को आस्ट्रेलिया के ख़िलाफ़ अगले डेविस कप मुक़ाबले की मेजबानी सौंप दी. अब इस फ़ैसले से आस्ट्रेलिया की यह दलील ख़ारिज़ हो गई है कि भारत में खेलने लायक माहौल नहीं है. यह जीत सिर्फ़ टेनिस की नहीं पूरे भारत की है, क्योंकि इस जीत से भारत फिर से अंतरराष्ट्रीय टेनिस मंच पर गर्व से खड़ा हो सकेगा. इस जीत ने यह भी साबित कर दिया है कि भारत दुनिया के किसी तथाकथित उन्नत देश से कम सुरक्षित नहीं है.

उधर अंतरराष्ट्रीय टेनिस महासंघ ने डेविस कप के कुछ नियमों में बदलाव की घोषणा भी की है. अब डेविस कप के फाइनल मुक़ाबले केवल बड़े शहरों में ही आयोजित किए जाएंगे. दरअसल पिछले साल क्ले कोर्ट पर खेलने से बचने के लिए अर्जेंटीना, स्पेन से होने वाले मुक़ाबले को ऐसे स्टेडियम में ले गया था जो पूरी तरह तैयार नहीं था. इस फ़ैसले के बाद ऐसा नहीं किया जा सकेगा. इसके अलावा महासंघ ने यूरोप-अफ़्रीका डेविस कप ग्रुप में भी कुछ बदलाव किए हैं.

लद गए टेस्ट क्रिकेट के दिन!

फोटो- पीटीआई

बहुत संभव है कि क्रिकेट के कुछ दीवाने इस बात से सहमत न हों. हालांकि, इससे पहले कि आप इस शीर्षक को पढ़कर इसे निराशावादी और *सिनिक* जैसे विशेषण जोड़ दें, हम चाहते हैं आप हाल के दिनों के कुछ दृश्य याद करें. पहला नजारा पाकिस्तान और श्रीलंका के बीच हो रहे पहले टेस्ट मैच का है. श्रीलंकाई मैदान पर खिलाड़ी जी-तोड़ पसीना बहा रहे थे, लेकिन अजीब बात थी कि उनके खेल को देखने को कोई मौजूद नहीं था. दर्शकों के नाम पर स्टैंड में इक्का-दुक्का लोग बैठे थे. मैदान के चारों ओर एक अजीब सा सूनापन छाया था. आश्चर्य यह भी था कि यह नजारा क्रिकेट के गढ़ दक्षिण एशिया का था, जहां क्रिकेटर्स को सेलेब्रेटीज की तरह देखा जाता है और उनकी एक झलक भर पाने को लोग जुटे रहते हैं. लेकिन इस बार न तो ऐसा रोमांच दिखा, न ही दीवानगी. दूसरा दृश्य वेस्टइंडीज का है. बांग्लादेश की टीम ने पहले टेस्ट में वेस्टइंडीज को हरा दिया, लेकिन इस मैच का नतीजा तो कैरीबियाई टीम ने ही तब तय कर दिया था, जब कप्तान क्रिस गेल के नेतृत्व में उसकी आधिकारिक टीम ने बांग्लादेश के साथ खेलने से इंकार कर दिया. मामले पैसे और कांट्रैक्ट विवाद से जुड़ा था. बाद में वेस्टइंडीज ने अपने जूनियर खिलाड़ियों की टीम को ही मैदान में उतार दिया. ज़ाहिर है, बांग्लादेश उन पर भारी पड़ रहा है.

तीसरा वाकया क्रिकेट की दो सबसे पुरानी टीमों और उनके बीच होने वाले सबसे प्रतिष्ठित टेस्ट सीरीज मुक़ाबले का है. एशेज़ के पहले टेस्ट में इंग्लैंड की आख़िरी जोड़ी ने रोमांचक तरीक़े से मैच बचा लिया था तो लॉर्ड्स में दूसरा टेस्ट मैच जीत कर उसने इतिहास रच दिया. यह देखकर कई दिग्गज कॉलमिस्टों ने लिख डाला कि असली टेस्ट क्रिकेट अभी ज़िंदा है. लेकिन अगले दिन इस टेस्ट का सारा रोमांच एक ख़बर के आगे फीका पड़ चुका था. एंड्रयू फ्लिंटाफ ने अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट से संन्यास ले लिया था. फ्लिंटाफ की उम्र संन्यास लेने की नहीं थी, लेकिन चोट के नाम पर उन्होंने संन्यास ले लिया. उधर, श्रीलंका के तेज़ गेंदबाज चामुंडा वास ने भी पाकिस्तान के साथ खेली जा रही सीरीज के बाद संन्यास की घोषणा कर दी. लेकिन दोनों आईपीएल में खेलते रहेंगे. इसलिए कि बीस ओवर खेलने की क्षमता उनमें है. अलग-अलग तरह की इन घटनाओं को देखें, तो इनमें एक गहरा संबंध है. ये तीनों ही एक बात की ओर इशारा करते हैं. कहते हैं कि हर अच्छी चीज़ का ख़ात्मा भी ज़रूर होता है, तो क्या टेस्ट क्रिकेट के अंत की शुरुआत भी हो चुकी है.

जब बीस-बीस ओवरों का क्रिकेट आया तभी काफी शोर मचा था कि इससे टेस्ट क्रिकेट का ख़ात्मा हो जाएगा. तब अधिकतर क्रिकेट प्रशासकों ने इसे शुद्धतावादियों का बेकार का डर करार देते हुए नकार दिया था, उन्हें पचास-पचास ओवरों वाले खेल का उदाहरण दे दिया गया था. तर्क था कि जैसे एकदिवसीय पचास ओवर के खेल से टेस्ट को कोई नुक़सान नहीं हुआ, वैसे ही ट्वेंटी-20 का भी इसपर कोई असर नहीं होगा. दरअसल क्रिकेट प्रशासक टी-20 के पीछे छुपे ख़ज़ाने को पहचान गए थे. वे इस ख़ज़ाने को गंवाना नहीं चाहते थे. उनकी सोच सही भी थी, बीस-बीस ओवरों के क्रिकेट को दर्शकों ने हाथों-हाथ लिया, क्रिकेट के खेल को नए दर्शक मिले. ख़ैर मामला यहां तक भी ठीक था, टेस्ट क्रिकेट को यहां तक भी कोई बड़ा ख़तरा नहीं था, भारत, आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों ने टेस्ट के रोमांच को बचाए रखा था. खिलाड़ी अभी भी टेस्ट को सबसे बड़ा खेल मानते थे. फिर एक बहुत बड़ा मोड़ आया, आईपीएल आया. टी-20 की दुधारू गाय को दुहने के लिए एक नए तरीक़े का इस्तेमाल किया गया. इस बार नजारा बदल चुका था. खिलाड़ी अब एक मैच की कमाई से ही मिलिनेयर होने लगे. आईसीएल या फिर कैरी पैकर की वर्ल्ड सीरीज की तरह इसमें आधिकारिक क्रिकेट से बहिष्कार का भी डर नहीं था. क्रिकेट अचानक कुबेर हो गया था. इस धनकुबेर क्रिकेट ने खिलाड़ियों को वह सब दिया जो पहले उन्हें कभी नहीं मिला था. पैसा, शोहरत, करोड़ों की व्यूअरशिप और आत्मनिर्भरता. अब खिलाड़ी ब्रांड बनने लगे. खेल अब खेल नहीं रहा बिज़नेस हो गया. ऐसा बिज़नेस जिसमें खिलाड़ियों को कमाई मिली और दर्शकों को रोमांच. ऐसे में आख़िर पांच दिनों तक चलने वाले धीमे, उबाऊ, कम कमाई कराने वाले टेस्ट क्रिकेट के लिए जगह ही कहां बची.

पिछले कुछ दिनों में इसका असर साफ नज़र आने लगा है. खिलाड़ी अब समझ गए हैं कि राष्ट्रीय टीमों के लिए खेलना अब ज़रूरी नहीं है. आईपीएल के कांट्रेक्ट से गाढ़ी कमाई की जा सकती है. अपनी पहचान भी ख़ूब बनाई जा सकती है, क्योंकि आईपीएल जैसे टूर्नामेंट पूरी दुनिया में देखे जा रहे हैं. खिलाड़ी अपना बाज़ार भाव जान गए हैं, तभी तो वेस्टइंडीज की पूरी टीम कम कमाई के मामले पर अपने ही बोर्ड से भिड़ गई. उन्हें वेस्ट इंडीज की ओर से टेस्ट मैच खेलना उतना आकर्षक इसलिए नहीं लगता कि उनके सामने आईपीएल का विकल्प मौजूद है. फ्लिंटाफ हों या वास, उन्होंने अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट से संन्यास लिया है लेकिन आईपीएल से नहीं. जिस चोट की वजह से उन्हें संन्यास लेना पड़ा वह भी उन्हें आईपीएल में ही लगी थी. भारत में ही खिलाड़ी अब राष्ट्रीय टीम में जगह पाने की तैयारी करता नहीं दिख रहा. उसकी तैयारी होती है तो आईपीएल खेलने की. यही वजह है कि पहले सुनील गावस्कर ने यह बात कही थी, और अब ग्रेग चैपल समेत दुनिया भर के पूर्व क्रिकेटर कहने लगे हैं. लगता है कि क्रिकेट में भी डारविन उतने ही प्रभावी हैं जितने जीवन में. यानी बचेगा वही जो वक़्त के हिसाब से ख़ुद को बदल ले. क्या टेस्ट क्रिकेट इस टेस्ट में पास हो पाएगा?

पवस नीर
feedback.chauthiduniya@gmail.com

पारुल की कायापलट

बिदाई सीरियल की रागिनी बहुत बदल गई है. वह अब सीधी-सादी और सब कुछ बर्दाश्त कर जाने वाली बहू नहीं रह गई है. जी हां, रागिनी बनने वाली पारुल चौहान ने अपने आप को एक हॉट बेब में बदल लिया है. यूं तो इसकी झलक उन्होंने पिछले दिनों रियलिटी शो- झलक दिखला जा-में भी दिखा दी थी. पर बात अब उससे भी अधिक की हो गई है. वह अब सिर्फ़ पश्चिमी परिधान पहनने लगी हैं. हेयर स्टाइल तो सीधे हॉलीवुड की नक़ल ही लग रही है. और तो और, निजी ज़िंदगी में भी वह अब बात-बात पर नहीं रोतीं. यूं अपनी नई हेयर स्टाइल पर वह सफाई भी देती हैं कि एक दिन घर में पूजा कर रही थीं, तभी धूप-अगरबत्ती से बाल जहां-तहां जल गए थे, जो देखने में बुरे लग रहे थे. इसीलिए हेयरस्टाइल ही चेंज कर लिया. जब हेयरस्टाइल चेंज हो गया तो उसी हिसाब से कपड़े भी उसी के मुताबिक पहनने पड़ रहे हैं. वैसे पश्चिमी शैली के कपड़े वह पार्टी आदि में कभी-कभार पहनती रही हैं. चूंकि रागिनी का रोल घरेलू महिला वाला था, इसलिए वह सार्वजनिक रूप से भारतीय नारी बनी रहती थीं. बहरहाल, अपने नए लुक से वह बहुत ख़ुश हैं. इतना कि छोटे पर्दे से बड़े पर्दे तक का सफ़र भी उन्हें पूरा होता दिख रहा है. कुछ निर्माता-निर्देशकों ने उन्हें फिल्मों के ऑफर भी दिए हैं, जिन पर बातचीत चल रही है. इसे कहते हैं ऊपर वाले की कृपा. यानी उन्हें आज जो नया लुक मिला है, वह भगवान की देन है ! लेकिन वह हैं कि इसका श्रेय अपनी ब्यूटीशियन को दे रही हैं.

अभिषेक से मणि असंतुष्ट

भारतीय सिनेमा में निर्देशक मणिरत्नम की इमेज कुछ हट कर रही है. दक्षिण के इस गंभीर फिल्मकार को उत्तर भारत में भी *रोजा, बॉम्बे* से लेकर *युवा* और *गुरु* तक के कारण काफी मान-सम्मान दिया जाता है. ऐसा हो भी क्यों नहीं, आख़िर वह अपनी कथा प्रधान फिल्मों के एक-एक फ्रेम में जान जो लगा देते हैं. यही कारण है कि उनकी फिल्म अपनी कहानी से जानी जाती है, न कि स्टारों से. बड़े से बड़ा स्टार उनके सामने सिर झुकाए रहता है कि एक मौका दे दें. इसलिए अगर किसी से वह रीटेक या किसी फिल्म के किसी हिस्से की दोबारा शूटिंग के लिए भी कहते हैं तो कोई नाक-भौं नहीं सिकोड़ता. उनकी आगामी फिल्म- रावण-में भी कुछ ऐसा ही हो रहा है. सूत्र बताते हैं कि मणि को फिल्म में रावण बने अभिषेक बच्चन का काम कुछ जंच नहीं रहा है. वह राम बने माधवन के सामने काफी फीके लगते हैं. जबकि पूरी फिल्म रावण के चरित्र पर ही निर्भर है. कमज़ोर नज़र आ रहे रावण के चरित्र को पर्दे पर सशक्त दिखाने के लिए वह अभिषेक बच्चन से दोबारा शूटिंग कराने वाले हैं. इस फिल्म में ऐश्वर्या राय बच्चन की भी महत्वपूर्ण भूमिका है. वैसे माधवन के सामने अभिषेक पहले भी कमज़ोर पड़ चुके हैं. ग़ौरतलब है कि अभिषेक की फिल्म *युवा* पहले तमिल में बनी थी. उसमें अभिषेक वाली भूमिका माधवन ने ही निभाई थी. लेकिन हिंदी रीमेक में माधवन जैसा प्रभाव पैदा करने में अभिषेक विफल रहे थे. शायद इसीलिए कहा जाता है कि सब कुछ विरासत में ही नहीं मिला करती.

रूबीना को अजीब लगीं निकोल

हॉलीवुड की मशहूर अभिनेत्री निकोल किडमेन की दुनिया कितनी भी प्रशंसा कर ले, *स्लमडॉग मिलिनेयर* की बाल कलाकार रूबीना अली को वह कुछ ख़ास नहीं जंची. यही कारण है कि रूबीना ने अपनी आत्मकथा में उन्हें अजीब कहा है. रूबीना इस समय महज़ नौ साल की है और इस उम्र में ही आत्मकथा प्रकाशित करा कर उसने सबको चौंका दिया है. उसकी आत्मकथा का नाम है- स्लमगर्ल ड्रीमिंग: जर्नी टू द स्टार्स. इसमें उसने हाल ही में एक विज्ञापन की शूटिंग के सिलसिले में निकोल की भारत यात्रा का ज़िक्र है. इस विज्ञापन में निकोल के साथ रूबीना भी है. इसकी शूटिंग मई में राजस्थान में हुई थी, जिसमें अर्जुन नागपाल ने भी काम किया था. इस विज्ञापन फिल्म को शेखर कपूर ने बनाया है. रूबीना के मुताबिक धूप के डर से निकोल अपने कमरे से बाहर ही नहीं निकलीं. वैसे उसने लिखा है कि, मुझे वह बहुत अच्छी लगीं, लेकिन वह किसी से बात करने के बजाय चुप ही रहती थीं. वैसे तो यह आत्मकथा कुल 192 पन्नों की है, लेकिन इनमें से सिर्फ़ 24 पन्ने ही उसके *स्लमडॉग मिलिनेयर* के पहले के जीवन से संबंधित हैं. उसने लिखा है कि इस फिल्म की सफलता से उसके जीवन पर कोई ख़ास प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि वह अब भी झुग्गियों में ही रहती है. आत्मकथा के मुताबिक उसे यह भी नहीं पता कि ऑस्कर विजेता फिल्म-स्लमडॉग मिलिनेयर-करने के लिए जो पैसे उसे मिले थे, वे कहां गए और किसे मिले. बहरहाल, उसकी यह आत्मकथा दिव्या दुग्गड़ ने लिखी है, जो पत्रकार हैं. इस आत्मकथा में रूबीना ने उन ख़बरों का भी ज़िक्र किया है, जिनमें उसे उसके पिता द्वारा बेचे जाने की बात कही गई थी. रूबीना ने फिल्म में लतिका (फ्रीडा पिंटो) की बचपन की भूमिका निभाई है.

बदल गया वक़्त

टेलीविजन के लिए फिल्म *शोले* जैसा महत्व रखने वाले सीरियल-क्योंकि सास भी कभी बहू थी-की तुलसी यानी स्मृति ईरानी के सितारे इन दिनों गर्दिश में हैं. कभी यह तुलसी की भूमिका का ही प्रभाव था कि वह घरों से लेकर राजनीति तक में स्टार बन गईं. लेकिन वह ज़माना था सास-बहू वाले सीरियलों का. अब वक़्त रियलिटी शो का है. लिहाज़ा, सीरियलों के भरोसे एकता कपूर कैंप से निकल कर अपना प्रोडक्शन हाउस शुरू करने वाली स्मृति को सितारों ने शायद धोखा दे दिया है. एक तो उन्होंने जिस पार्टी-भाजपा-का दामन थाम रखा है, वह केंद्रीय सत्ता में आने से रह गई. दूसरे, स्टार प्लस को छोड़ सब टीवी व अन्य चैनलों के साथ तालमेल कुछ ख़ास जम नहीं रहा. हालत यह है कि हाल में शुरू हुआ उनका एक भी सीरियल टीआरपी बटोरने में सफल नहीं हो रहा. लिहाज़ा, उनके साथ-साथ चैनलों की प्रतिष्ठा भी दांव पर लग गई है. सूत्र बताते हैं कि कई चैनलों ने उनसे कह भी दिया है कि वह अपने सीरियलों पर पुनर्विचार अवश्य करें. बताया जा रहा है कि इसीलिए वह इन दिनों रियलिटी शो बनाने पर गंभीरता से सोच रही हैं. इसके लिए उन्होंने इस क्षेत्र के कुछ बड़ी हस्तियों के साथ मशविरा भी किया है. स्मृति जी, यही है रियलिटी.

कैट ने अक्षय को बचाया

किसी की बर्थडे पार्टी में किसी के जाने या न जाने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है, लेकिन जब बात कैटरीना कैफ़ की पार्टी की हो तो बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है. पिछले साल की बर्थडे पार्टी तो आपको याद ही होगी, जिसमें लड़ने के बाद सलमान और शाहरुख़ ख़ान मुंह फुलाए बाहर निकले थे. इससे सीख लेते हुए गत 16 जुलाई को कैट ने अपना 25वां जन्मदिन न सिर्फ़ मुंबई के बजाय लंदन में मनाया, बल्कि सलमान के ख़ौफ़ से बचाने के लिए अपने सहकलाकारों को भी नहीं बुलाया. बर्थडे पार्टी को उन्होंने अंतिम समय तक गोपनीय रखा. इसलिए लोग यही कयास लगाते रह गए कि उन्होंने बर्थडे लंदन में मनाया कि इटली में. वैसे वह अपने परिवार के साथ उसी दिन इटली गईं ज़रूर. लंदन की बर्थडे पार्टी में न बुलाए जाने से सबसे अधिक राहत महसूस की अक्षय कुमार ने. इसलिए कि वह साजिद नाडियाडवाला की फिल्म-हाउसफुल- की शूटिंग इन दिनों वही कर रहे हैं. सबको उम्मीद थी कि कैटरीना अपने सबसे लकी को-स्टार अक्षय को तो बुलाएगी ही, पर कैट बेबी ने ऐसा नहीं किया. ऐसा कर उन्होंने सबको भले हैरान कर दिया हो, लेकिन घरवालों ने भी बड़ी राहत महसूस की. किसी फिल्म वाले को नहीं बुलाए जाने से पूरा समारोह ही पारिवारिक हो गया, जिसकी तलाश कैट लंबे समय से कर रही थीं. कश्मीरी पिता मोहम्मद कैफ़ और ब्रिटिश मां सुजैन की संतान कैटरीना छह बहनें हैं. उनका एक भाई भी है. बर्थडे पर सालों बाद सभी बहनें-भाई जमा हुए. कैटरीना का जन्म हांगकांग में हुआ. उन्होंने 2003 में फिल्म *बूम* से अपना करियर शुरू किया था. 2005 में उन्होंने सलमान ख़ान के साथ फिल्म *मैंने प्यार क्यों किया* से की थी. उसके बाद से उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा. उनकी कुछ मशहूर फिल्मों में *नमस्ते लंदन, पार्टनर, सिंह इज किंग, युवराज* और *न्यूयॉर्क* आदि हैं.

फिर चला हैरी पॉटर का जादू

लगता है नीली आंखों वाले नन्हें जादूगर का करिश्मा अभी भी दुनिया में चढ़ कर बोल रहा है. हैरी पॉटर सीरीज की छठी फिल्म *हैरी पॉटर एंड द हाफ ब्लड प्रिंस* ने 16 जुलाई की आधी रात में अपनी रिलीज से ही रिकार्ड तोड़ने शुरू कर दिए हैं. उसने आधी रात को रिलीज हुई फिल्मों की पहली कमाई के मामले में सभी फिल्मों को पीछे छोड़ दिया है. *हैरी पॉटर एंड द हाफ ब्लड प्रिंस* की कमाई 22 मिलियन डॉलर का आंकड़ा छूकर *द डार्क नाइट* के 17 मिलियन के रिकार्ड को तोड़ दिया है. इसके साथ ही हैरी पॉटर सीरीज की अब दुनिया के सबसे कमाऊ फिल्म सीरीज बनने का रास्ता भी खुल गया है. हैरी पॉटर की छह फिल्मों की कमाई इससे पहले सबसे आगे रही फिल्म सीरीज जेम्स बांड से थोड़ी ही कम है. हैरी पॉटर सीरीज की कोई फिल्म दो साल बाद आई है. ख़ैर, जब हैरी पॉटर का जादू क़ायम हो तो बॉक्स ऑफिस पर सोना तो बरसेगा ही. भारत में पहले दो दिनों में ही इसने लगभग पांच करोड़ की कमाई की है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अनिल अंबानी चले हॉलीवुड

फोटो-प्रभात पाण्डेय

मशहूर उद्योगपति अनिल अंबानी अब हॉलीवुड के नामी निर्देशक स्टीवन स्पीलबर्ग के साथ फिल्में भी बनाएंगे. इस सिलसिले में पिछले दिनों दोनों के बीच समझौता भी हो गया है. दोनों ने मिल कर जो कंपनी बनाई है, उसका नाम है-ड्रीमवर्क्स स्टूडियो. इस साझेदारी में दोनों की बराबर की भागीदारी होगी. फ़िलहाल यह कंपनी साल भर में लगभग आधा दर्ज़न फिल्में बनाएगी, जो पूरी दुनिया में प्रदर्शित की जाएंगी. पहली फिल्म का काम तो इसी साल शुरू हो जाएगा और वह अगले साल रिलीज भी हो जाएगी. बताया जा रहा है कि कंपनी के लिए पैसा बैंकों के एक समूह से आएगा. इसके अलावा डिज्नी ग्रुप भी इसमें निवेश करेगा. बहरहाल, अनिल अंबानी ने कहा है कि यह उनका निजी निवेश है और इससे उनकी सूचीबद्ध कंपनियों का कुछ लेना-देना नहीं है. भारत में *जुरासिक पार्क* फिल्मों के कारण स्पीलवर्ग घर-घर में पहचाने जाते हैं. वैसे अनिल अंबानी की कंपनी-रिलायंस बिग इंटरटेनमेंट-हॉलीवुड के अलावा भारतीय फिल्मों में भी पैसा लगा रही है. भारत में जिन निर्देशकों के साथ करार किया गया है, उनमें मधुर भंडारकर, अपूर्व लखिया, श्याम बेनेगल, रितुपर्णो घोष, बुद्धदेव दासगुप्ता, विधु विनोद चोपड़ा आदि हैं. सूत्रों के मुताबिक अनिल अंबानी के फिल्मी बिज़नेस को उनकी पत्नी और पूर्व फिल्म अभिनेत्री टीना मुनीम अंबानी देखेंगी.

कृपया अपने सबस्क्रिप्शन चेक अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के नाम पर अपने नाम और पूरे पते के साथ यहां भेजें : (गैनन) के-2, दूसरी मंज़िल, चौधरी बिल्डिंग, मिडिल सर्किल, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली -110001

वार्षिक शुल्क :1000 रु.